नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक समाचारपत्र • वर्ष 5 अंक 8
सितम्बर 2003 • तीन रुपये • बारह पृष्ठ

जोड़-तोड़ और सौदेबाजी के सहारे मुलायम सिंह यादव ने सरकार बनायी

कुर्सी पर सांपनाथ बैठें या नागनाथ मेहनतकशों की लूट बदस्तूर जारी रहेगी!

• सम्पादक

नई सरकार से जनता को मिलेंगे नये झूठे वादे, नई-नई ढपोरशंखी घोषणाएं और दमन-उत्पीड़न के नये कीर्तिमान • जनतंत्र के इस घिनौने खेल से लोग ऊब चुके हैं • विकल्प की बेचैनी बढ़ती जा रही है • अवाम की इस बेचैनी को बदलाव की ऊर्जा में बदलने की जरूरत है!

लखनऊ। पिछले दिनों राजनीतिक जोड़-तोड़ और सौदेबाजी का नया कीर्तिमान कायम करते हुए जिस तरह मुलायम सिंह यादव ने उत्तर प्रदेश में नयी सरकार की कमान सम्भाली उसे आम लोगों ने बड़ी ही उबासी और हिकारत के साथ देखा। लोगों को न तो बसपाइयों-भाजपाइयों के लटके हुए चेहरों से कोई हमदर्दी हुई और न ही सपाइयों के ढोल-नगाड़े उनके भीतर कोई जोश जगा सके। 'कोउ नृप होंहि हमें का हानी' की मानसिकता में जी रहे लोग अब सरकारों को बनाने-गिराने के इस खेल में तमाशाई भी नहीं बनना चाहते। अपनी जिन्दगी के तजुर्बो से वे यह जान चुके हैं कि सरकारों के बदलने से कुछ भी फर्क नहीं पड़ता। कुर्सी पर सांपनाथ बैठें या नागनाथ, सब कुछ बदस्तूर चलता रहता है।

लम्बे समय से मायावती सरकार को गिराने के अभियान में जुटे सपा सुप्रीमो को उस समय अपने आप अवसर हाथ लग गया जब बसपा-भाजपा का सौदा बिगड़ गया और मायावती ने इस्तीफा देकर फिर से चुनाव कराने की सिफारिश कर दी। इसके बाद दूसरी पार्टी के विधायकों को तोड़ने-फोड़ने की कला में माहिर मुलायम सिंह यादव ने अपना खेल शुरू किया और मुख्यमंत्री की शपथ लेने और विधानसभा में बहुमत साबित कर दिखाने के बाद ही जाकर दम लिया। दरबदल कानून से बचने के लिए बसपा के एक तिहाई विधायकों ने आनन-फानन में पहले लोकतांत्रिक बहुजन समाज पार्टी बना डाली और फिर उसका सपा में विलय कर दिया। उत्तर प्रदेश में अपने राजनीतिक पुनरुत्थान के लिए हाथ-पैर मार रही कांग्रेस, अजित सिंह की पार्टी राष्ट्रीय लोकदल और निर्दलीय विधायकों के समर्थन के बूते मुलायम सिंह को आवश्यक बहुमत हासिल हो गया।

मुलायम सिंह यादव की सरकार बनाने में भाजपा का भी परोक्ष हाथ रहा। दरअसल, लोकसभा चुनावों के पहले भाजपा प्रदेश विधानसभा चुनाव में उतरना नहीं चाहती थी। इस मजबूरी के चलते भाजपा नेतृत्व और सपा सुप्रीमो के बीच अन्दरखाने यह समझौता हुआ कि अगर भाजपा विधायकों को न फोड़ने का आश्वासन मिले तो मुलायम सिंह यादव को सरकार बनाने का न्यौता मिल सकता है। यह आश्वासन मिलने के बाद ही राज्यपाल विष्णुकान्त शास्त्री ने मुलायम सिंह को सरकार बनाने का न्यौता दिया।

'गरीबों के मसीहा' और समाजवादी होने का दम भरने वाले मुलायम सिंह यादव के शपथग्रहण समारोह में अनिल अम्बानी, और सुब्रत राय सहारा जैसे पूंजीपतियों से लेकर अमिताभ बच्चन और राजबब्बर जैसे अरबपति फिल्मी सितारे मौजूद थे। सरकार को समर्थन देने वाले विधायकों में तमाम हिस्ट्रीशीटर और व्यभिचारी तक शामिल हैं। अमरमणि त्रिपाठी और रघुराज प्रताप सिंह उर्फ राजा भैया तो मुलायम सरकार के समर्थकों में चन्द सबसे अधिक चमकने वलो नगीने हैं। ऐसे ही कई नगीने अपने मुकुट में टांककर मुलायम सिंह यादव ने गद्दी संभाली है।

लेकिन इन सबके बावजूद मुलायम सिंह यादव और उनके संगी-साथी खुद को समाजवादी कहने में कोई शर्म नहीं महसूस करते। मुलायम सिंह यादव का समाजवाद शायद इस सूत्रवाक्य से निर्देशित होता है—सत्ता के साझीदारों के बीच सामाजिक उत्पादन की लूटपाट का समान बंटवारा! इसीलिए सभी समर्थक दलों के बीच मंत्रिपद के समान बंटवारे की नीति पर वह चल रहे हैं। हालांकि कांग्रेस पार्टी अपना टुकड़ा लेने के लए अभी तैयार नहीं दिख रही है। उसकी इस बेदिली का कारण यह असमंजस है कि सरकार में शामिल होकर प्रदेश में उसका राजनीतिक भविष्य सुधरेगा या बाहर से समर्थन देकर। पार्टी के कई विधायक लाल बत्ती का सपना देख रहे हैं मगर आलाकमान बाहर से ही समर्थन देने के मूड में दिख रहा है।

बहरहाल, प्रदेश में मुलायम सरकार बनने से उन अफसरों का राजपाट अलबत्ता छिन गया है जो मायावती शासन में मलाईदार पदों पर

(पेज 8 पर जारी)

लूट के माल में अपने हिस्से के लिए एकजुट हुए छोटे लुटेरे

विशेष संवाददाता

कानकुन में संपन्न विश्व व्यापार संगठन का मंत्रिस्तरीय सम्मेलन

दिल्ली। मेक्सिको के शहर कानकुन में सम्पन्न विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यू.टी.ओ.) के मंत्रिस्तरीय सम्मेलन में तीसरी दुनिया के शासक वर्गो की एकजुटता साम्राज्यवादी लुटेरों के ऊपर भारी पड़ गयी। 11-15 सितम्बर '03 के बीच चले इस सम्मेलन में विश्व स्तर पर मेहनतकशों की लूट में अपना हिस्सा बढ़ाने के लिए छोटे लुटेरों ने अपने बड़े बिरादरों से अड़कर सौदेबाजी की, नतीजतन सम्मेलन बेनतीजा समाप्त हो गया।

सम्मेलन में तीसरी दुनिया के देशों के शासक वर्गो (जिन्होंने समूह-21 या जी-21 के तहत खुद को संगठित किया है और भारत इस समूह का प्रमुख सदस्य है) और अमेरिका, जापान एवं यूरोपीय संघ के साम्राज्यवादी देशों के शासक वर्गो (जो समूह-8 या जी-8 के तहत संगठित हैं) के प्रतिनिधियों के बीच कृषि सब्सिडी का मसला विवाद का मुख्य बिन्दु बनकर उभरा। जी-21 के प्रतिनिधियों ने इस बात पर एकजुट दबाव बनाया कि अमेरिका और यूरोपीय संघ के देश अपने यहां किसानों को दी जाने वाली भारी सब्सिडी को खत्म करें तभी सिंगापुर सम्मेलन में सूचीबद्ध किये गये मुद्दों पर बातचीत शुरू की जा सकती है। सिंगापुर सम्मेलन में जी-8 के देशों ने तीसरी दुनिया के देशों के बाजारों को और खुला करने के लिए विदेशी निवेश और प्रतिस्पर्द्धा पर हर तरह की रोक हटाने, आयात-निर्यात पर हर तरह की बंदिशें हटाने और सरकारी खरीद में खुलेपन सम्बन्धी चार मुद्दे बातचीत के लिए पेश किये थे। वर्ष 2001 के अन्त में कतर की राजधानी दोहा में सम्पन्न बैठक में इन सभी मुद्दों को कानकुन बैठक के लिए टाल दिया गया था।

कानकुन में जी-8 के प्रतिनिधियों ने जी-21 के प्रतिनिधियों के बीच फूट डालकर सिंगापुर एजेण्डे को आगे बढ़ाने की हर सम्भव कोशिश की लेकिन इस बार वे कामयाब न हो सके। विश्व व्यापार संगठन की पिछली मंत्रिस्तरीय बैठकों में आम तौरपर घुटनाटेकू रवैया अख्तियार करने वाले भारतीय शासक वर्ग के नुमाइंदों ने इस बार जी-21 के देशों की रहनुमाई करते हुए अड़ियल रुख दिखाया। ब्राजील, चीन, मलेशिया, इण्डोनेशियाई, फिलिप्पीन्स जैसे जी-21 के महत्वपूर्ण देशों के शासक वर्गो ने भी इस बार भारतीय शासक वर्ग के रुख का एकजुट होकर समर्थन किया और सम्मेलन के अन्त तक कृषि सब्सिडी खत्म करने के मुद्दे पर अड़े रहे।

जी-21 के देशों के शासक वर्गो का यह अड़ियलपन दरअसल उनकी न टाली जा सकने वाली मजबूरी बन गया है। यह कहना भोलापन होगा कि अचानक उन्हें अपने किसानों की तबाही की चिन्ता सताने लगी है। यह भी ध्यान देने की बात है कि सरकारों के प्रतिनिधि जब किसानों की चर्चा करते हैं तो उनका मतलब मुनाफे की खेती करने वाले धनी किसानों से ही होता है। छोटे-मझोले किसान उनकी जेहन में आते ही नहीं। दरअसल विश्व व्यापार संगठन की वार्ताएं अब उस मुकाम पर पहुंच चुकी हैं कि अगर तीसरी दुनिया के छोटे लुटेरे अपने बड़े बिरादरों के सामने एकजुट होकर श्रम की विश्वव्यापी लूट में अपने हिस्से को बढ़ाने की हर मुमकिन कोशिश नहीं करेंगे तो फिर उन्हें अपना मौजूदा हिस्सा भी बचाना मुश्किल हो जायेगा।

भूमण्डलीकरण के इस दौर में जो 'नयी विश्व व्यवस्था' कायम करने के लिए अमेरिकी लुटेरों की अगुवाई में जापान व यूरोपीय संघ के देश कटिबद्ध हैं, उसमें अपनी-अपनी आर्थिक हैसियत के मुताबिक जगह तभी मिल सकती है जब आज के मुकाम पर खड़े होकर वे अधिकतम सम्भव सौदेबाजी करें। कृषि वह अहम क्षेत्र है जिसमें तीसरी दुनिया के पूंजीपति विश्व बाजार की होड़ में एक हद तक टक्कर देने के मंसूबे बांध सकते हैं। इसमें जी-8 के देशों में किसानों को मिल रही सब्सिडी एक बड़ी बाधा है। अगर इस सब्सिडी को खत्म कराये बिना सिंगापुर मुद्दे पर बातचीत शुरू हो गयी तो इन देशों के घरेलू बाजार पर बहुराष्ट्रीय निगमों का जो हमला होगा उसके मुकाबले में घरेलू पूंजीपतियों के दम तोड़ने की नौबत आ सकती है। इसी आशंका के

(पेज 8 पर जारी)

आपस की बात

मजदूर न्यायालय की जरूरत

मैं एक छोटे से मामले में कचहरी का तब से चक्कर लगा रहा हूं जब मेरा गौना हुआ था। इस समय मेरे सबसे बड़े लड़के की उम्र आठ साल हो चुकी है।

मैं पावरलूम किराये पर लेकर दो लड़कों की सहायता से चलाता था। एक दिन लेबर इंस्पेक्टर आया। उस दिन मैं नहीं था। लेबर इंस्पेक्टर ने लड़कों से उम्र पूछा और एक कागज पर अंगूठा लगवा कर ले गया। चार-पांच दिनों बाद मेरे पास कोर्ट से सम्मन आया जिसमें लिखा था कि 'आप पर एक बाल मजूदर से मजदूरी कराने का आरोप है'।

मैं कोर्ट में निश्चित तिथि को पहुंचा और मैंने बताया कि लड़के की उम्र पन्द्रह साल से ऊपर है। कोर्ट ने सबूत मांगा–मैंने स्कूल से टी.सी. लाकर दिखाया। उसमें भी उसकी उम्र पन्द्रह साल थी। ध्यान रहे यहां पावरलूम में काम करने के लिए न्यूनतम उम्र चौदह वर्ष है जबकि लेबर इंस्पेक्टर तेरह वर्ष लिखकर ले गया था। उसके बाद मैं लगभग दो साल तक लेबर कोर्ट में चक्कर लगाता रहा। उसी बीच एक तारीख पर लेबर-कमिश्नर से मेरी बक-झक हो गयी तो उसने कहा, कागजात मुझे दे दो और जाओ, मामला समाप्त हो जायेगा। मुझे भी उस समय उसकी बात सही लगी क्योंकि उसने खुशी मन से कहा था। लेकिन अभी साल भर भी नहीं बीते ये एक दिन मेरे घर पर मेरे नाम से गैर जमानती वारण्ट इसी मामले के लिए आ पहुंचा। गांव में खलबली मच गई इतनी रात गये पुलिस क्यों आ गयी। अंत में घर वालों ने पांच सौ रुपये पुलिस वालों को दिये, जिससे हमें वे गिरफ्तार करके नहीं ले जायें। अगले दिन मैंने जमानत करायी। उसके बाद से तो अब तक सैकड़ों बार तारीख पड़ चुकी होगी। एक बार न जाये तो वारण्ट कट जाये और वहां जाने पर पेशकार को पैसा दो तो तारीख पड़ेगी। वकील को पैसा दो तो फाइल खुलेगी तब जाकर कहीं अगली बार कचहरी फेरी का दरवाजा फिर एक बार खुलेगा।

समझ में नहीं आता कि इस तरह के कानून-व्यवस्था की क्या जरूरत हैं जहां न्याय नहीं होता बल्कि न्याय की दुकान पर आदमी को फांसा जाता है और पीढ़ी दर पीढ़ी मेहनत मजदूरी की गाढ़ी कमाई को जज से लगायत चपरासी तक निचोड़ते रहते हैं। मुझे तो अपने ही केस में दौड़ते-दौड़ते एक बात तो पक्की तरह समझ में आ गयी है कि अगर हम मजदूरों को न्याय चाहिए तो हमें खुद ही मजदूर न्यायालय बनाने होंगे। अभी जो न्यायालय मौजूद हैं वह अमीरों के न्यायालय हैं, अमीरों की कोई भी संस्था गरीबों के शोषण के दम पर ही खड़ी होती है। जैसे अगर किसी गरीब आदमी ने कर्ज ले लिया और धनी को वापस नहीं कर पाया तो न्यायालय किसके पक्ष में फैसला देता है, यह किसी से छिपा नहीं है। गरीब की कुर्की-जब्ती होगी। अतः मेरी यह समझ बन रही है कि इन न्यायालयों की बराबरी में मजदूर न्यायालय बनाने होंगे। यह कैसे बनेगा, मैं 'बिगुल' से जानना चाहता हूं।

– रामलाल मौर्य
छाहीं, सारनाथ, वाराणसी

प्रिय साथी,

जब देशभर के मेहनतकश अपनी क्रान्तिकारी पार्टी के झण्डे तले मौजूदा पूंजीवादी-साम्राज्यवादी निजाम को उखाड़ फेंकेंगे और अपनी हुकूमत कायम करेंगे, तभी पूंजीवादी न्यायालयों की चकरघिन्नी से छुटकारा मिल सकेगा। मजदूर न्यायालयों का सपना तो तभी हकीकत बन सकता है। यह लम्बा, कठिन लक्ष्य जरूर है पर असंभव कतई नहीं।

पिछली सदी में मजदूरों ने दुनिया के कई मुल्कों में अपना राज बनाया था और अपने न्यायालय भी। आज भले ही इन मुल्कों में पूंजीपतियों का राज फिर से लौट आया है पर पूरी दुनिया में मजदूर नये सिरे से पूंजी के किलों पर धावा बोलने की तैयारियों में जुटे हुए हैं। हमारे देश के मेहनतकश भी इसमें पीछे नहीं हटेंगे।

हां, मजदूरों का अपना राज और अपनी अदालतें कायम करने की दिशा में रिहर्सल के लिए कुछ शुरुआती कदम अभी से ही उठाए जा सकते हैं। जहां कहीं भी मेहनतकश संगठित हों, वहां ऐसी जनअदालतें जरूर कायम की जा सकती हैं जिनमें आपसी झगड़ों-विवादों का निपटारा किया जाए। इससे पूंजीवादी न्यायालयों के चक्कर काटकर अपना समय, ऊर्जा और मेहनत की कमाई गंवाने से छुटकारा मिल सकता है।

—संपादक

उम्मीद जाग उठी

पिछले तीन महीनों से मैं 'बिगुल' पढ़ रहा हूं। मुझे कम्युनिस्ट आंदोलन से सख्त नफरत थी क्योंकि अपने समाज के समाजवादियों को मैंने करीब से परखा था। लेकिन पहली बार जब 'बिगुल' में देखा कि हमारे तथाकथित समाजवादियों को भी किसी स्वार्थ की परवाह किये बिना यह विरोध करता है और सच्चे अर्थों में सर्वहारा क्रान्ति की वकालत करता है तो कुछ उम्मीद जाग उठी। आज पश्चिम बंगाल और केरल में समाजवाद का जो चेहरा है, उसे देखकर कौन कहेगा कि समाजवाद सही है। 'बिगुल' ने इसका जमकर विरोध किया है।

अपनी एक कविता मैं 'बिगुल' को भेज रहा हूं। यह उन सहपाठियों को समर्पित है जो आर्थिक बोझ के कारण पढ़ाई अधूरा छोड़कर मेहनतकश का जीवन बिताने लगे।

सर्वहारा

तुमने हंसने का वादा किया था
अब तो सावन भी गुजरने को है।

मुझे याद नहीं पिछली बार तुम कब
हंसे थे।
मुझे पता है
तुमपे जब जवानी आयी,
हमने समपने शुरू किये थे।
हम तुतलाकर बोलते थे
तब तुमने चिल्लाना सीखा

तुमने सपने देखना सीखा ही नहीं
और तुम आज भी
दो हाथ दो पैर के आदमी हो।

मैं चकित रहता हूं
कहीं तुम हंसना भूल तो नहीं गये।

–देव आसामी, प. बंगाल

राहुल फाउण्डेशन का नया प्रकाशन
बोल्शेविक पार्टी का इतिहास
पृ. 360 मूल्य : 80 रुपये
प्रतियों के लिए जनचेतना के केन्द्रों से संपर्क करें।

ट्रेन में बिगुल

मैं नरेन्द्रा पेपर मिल, अमृतसर में मजदूरी कर रहा था लेकिन मालिक की ज्यादती के कारण मेरा हिसाब हो गया। इस समय मैं नौकरी की तलाश में भटक रहा हूं। पिछले दिनों मुझे कुरुक्षेत्र रेलवे स्टेशन पर कुछ मजदूर भाई मजदूर एकता की अपील करते हुए मिले। उन्हीं से मुझे 'बिगुल' मिला जिसे पढ़कर मेरा मन इतना खुश हुआ कि उसे लिखने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। फिर मैं कुरुक्षेत्र से भटिण्डा जाने वाली गाड़ी से तापा जा रहा था। मेरे हाथ में 'बिगुल' था, जिसे देखकर एक छात्र और एक छात्रा चौंक गये। उन्होंने मुझसे 'बिगुल' मांगकर पढ़ा और इसकी खूब प्रशंसा करते हुए मुझसे इसका मासिक सदस्य बनने के लिए कहा।

फिलहाल मैं तापा में अपने भाई के पास रहता हूं। जिस दिन कहीं स्थायी नौकरी मिल गयी मैं तत्काल 'बिगुल' का स्थायी सदस्य बनना चाहूंगा।

'बिगुल' के जरिये मजदूर भाइयों को जो संदेश आप दे रहे हैं उसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद।

–शम्भू प्रसाद, तापा, संगरूर

बिगुल के पाठक साथियों और शुभचिन्तकों से एक अपील

'बिगुल' के पिछले सात वर्षों का सफर तरह–तरह की कठिनाइयों–चुनौतियों से जूझते गुजरा है। इस दौरान अनेक नये हमसफर हमारी टीम से जुड़े हैं और पाठक–साथियों का दायरा भी काफी बढ़ा है। कहने की जरूरत नहीं कि अब तक का कठिन सफर हम अपने हमसफरों और शुभचिन्तकों के संग–साथ के दम पर ही पूरा कर सके हैं। हालात संकेत दे रहे हैं कि आगे का सफर और अधिक कठिन और चुनौती भरा ही नहीं बल्कि जोखिमभरा भी होगा। हमें विश्वास है कि हम अपने दृढ़संकल्प और हमसफर दोस्तों की एकजुटता के दम पर आगे ही बढ़ते रहेंगे।

'बिगुल' अपने पुरअसर तेवर और अपने विशिष्ट जुझारू अंदाज के साथ आपके पास नियमित पहुंचता रहे, इसके लिए अखबार के आर्थिक पहलू को और अधिक पुख्ता बनाना जरूरी है। जाहिर है कि यह अपने संगी–साथियों और शुभचिन्तकों की मदद के बिना मुमकिन नहीं। हमारी आपसे पुरजोर अपील है कि :

- **बिगुल के स्थायी कोष के लिए अधिकतम संभव आर्थिक सहयोग भेजें।**
- **जिन साथियों की सदस्यता समाप्त हो चुकी है वे यथाशीघ्र नवीनीकरण करा लें।**
- **बिगुल के नये सदस्य बनायें।**
- **बिगुल के वितरण को और व्यापक बनाने में सहयोग करें।**
- **कुछ वितरक साथियों के पास बिगुल के कई अंकों की राशि बकाया है। इसे यथाशीघ्र भेजकर बिगुल नियमित प्राप्त करना सुनिश्चित कर लें।**

सहयोग राशि बैंक ड्राफ्ट या मनीऑर्डर से सम्पादकीय कार्यालय के पते पर भेजें। बैंक ड्राफ्ट 'बिगुल' के नाम से भेजें।

—सम्पादक

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियां

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मजदूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मजदूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूंजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मजदूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मजदूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी–चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूंजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी–अराजकतावादी ट्रेड्यूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

नई समाजवादी क्रान्ति का उद्‌घोषक बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय : **69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006**
सम्पादकीय उपकार्यालय : **जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ**
दिल्ली सम्पर्क : **29, यू.एन.आई. अपार्टमेण्ट, जीएच-2, सेक्टर-11, वसुंधरा-गाजियाबाद-201010**
ईमेल : bigulakhbar@hotmail.com

मूल्यः एक प्रति–रु. 3/- वार्षिक–रु. 40.00 (डाक खर्च सहित)

बिगुल

'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध :

1. डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
2. जनचेतना स्टाल, काफी हाउस बिल्डिंग, हजरतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8 बजे तक)
3. जाफरा बाजार, गोरखपुर-273001
4. 989, पुराना कटरा, यूनिवर्सिटी रोड, मनमोहन पार्क, इलाहाबाद
5. जनचेतना सचल स्टाल (ठेला) चौड़ा मोड़, नोएडा (शाम 5 से 8)

मेहनतकश साथियों के लिए जरूरी कुछ पुस्तकें

कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढांचा –लेनिन 5/-
मकड़ा और मक्खी –विल्हेल्म लीब्कनेख्त 3/-
ट्रेड यूनियन काम के जनवादी तरीके –सर्जी रोस्तोवस्की 3/-
अनवश्वर है सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएं 10/-
समाजवाद की समस्याएं, पूंजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति 12/-
क्यों माओवाद? 10/-
बुर्जुआ वर्ग पर सर्वतोमुखी अधिनायकत्व लागू करने के बारे में 5/-
मई दिवस का इतिहास 5/-
अक्टूबर क्रान्ति की मशाल 12/-
पेरिस कम्यून की अमर कहानी 10/-

बिगुल विक्रेता साथी से मांगें या इस पते पर 17 रु. रजिस्ट्री शुल्क जोड़कर मनीआर्डर भेजें: जनचेतना, डी-68, निराला नगर, लखनऊ।

पूंजीपति-पुलिस-गुण्डा गंठजोड़ द्वारा मजदूरों की आवाज कुचलने के खिलाफ

संघर्ष में हम बिगुल के साथ हैं!

पूंजीपति-पुलिस गंठजोड़ द्वारा 'बिगुल' पर हमले के खिलाफ देश भर में विरोध की जो आवाजें उठीं, उनका एक संक्षिप्त ब्यौरा हम अगस्त 2003 अंक में दे चुके हैं। उक्त अंक छपने के बाद 'बिगुल' कार्यालय पर हमें अपने हमसफर दोस्तों के कई और पत्र प्राप्त हुए हैं जिनमें विरोध कार्रवाइयों की जानकारियां दी गयी हैं। नीचे हम संक्षिप्त रपट दे रहे हैं। –सम्पादक

छत्तीसगढ़ : पत्रकारों, साहित्यकारों, रंगकर्मियों और कर्मचारी संगठनों ने ज्ञापन भेजा

'बिगुल' पर हमले के विरोध में देश भर में हुए विरोध के तहत छत्तीसगढ़ की राजधानी रायपुर में भी पत्रकारों, साहित्यकारों रंगकर्मियों और कर्मचारी संगठनों ने हस्ताक्षर अभियान चलाकर उत्तर प्रदेश के विभिन्न अधिकारियों को डाक के माध्यम से ज्ञापन भेजा। ज्ञापन के माध्यम से इन लोगों और संगठनों ने इस घटना में शामिल पुलिसकर्मियों के खिलाफ कार्रवाई और इस घटना की निष्पक्ष जांच की मांग की।

हस्ताक्षर अभियान में प्रमुख रूप से छत्तीसगढ़ के प्रमुख हिन्दी दैनिक 'देशबन्धु' के प्रधान संपादक **ललित सुरजन,** रायपुर संस्करण के स्थानीय संपादक **रुचिर गर्ग,** बिलासपुर संस्करण के संपादक **आलोक प्रकाश पुतुल,** सांध्य दैनिक 'हाइवे चैनल' बिलासपुर के संपादक **अजय सिंह** और देशबंधु पत्र समूह के उपाध्यक्ष **राजीव रंजन श्रीवास्तव** सहित देशबंधु के कई पत्रकार शामिल हैं।

इसके अलावा **प्रगतिशील लेखक संघ** की छत्तीसगढ़ इकाई के अध्यक्ष **डा. रमाकांत श्रीवास्तव,** महासचिव **प्रभाकर चौबे** और रायपुर इकाई के अध्यक्ष **आलोक वर्मा,** महासचिव **आनन्द हर्षुल,** 'इप्टा' के अध्यक्ष **मोइज कापसी,** उपाध्यक्ष **मिनाज असद** और **गोपाल गुप्ता** और **राजेन्द्र ओझा** सहित कई रंगकर्मी शामिल हैं। इसी तरह मेडिकल रिप्रेजेंटेटिवों के संगठन की स्थानीय इकाई एमपीएमएस आरयू के **अपूर्व गर्ग, नवीन गुप्ता** इत्यादि, बीमा कर्मचारियों के संगठन आर डीआईईयू के **धर्मराज महापात्र** और **ए.के. शुक्ला** सहित सैकड़ों लोगों ने इस हस्ताक्षर अभियान में भाग लिया।

जयपुर : डेढ़ सौ से अधिक लेखकों, पत्रकारों, सामाजिक कार्यकर्ताओं और छात्रों ने विरोध पत्र भेजा

समय माजरा के सम्पादक **हेतु भारद्वाज,** लेखक **राजाराम भादू,** कवि **ओमेन्द्र,** वरिष्ठ पत्रकार और कहानीकार **ईशमधु तलवार,** लेखक **गोविन्द माथुर,** सी.पी.आई. (एमएल) के **हरकेश बुगालिया,** जनप्रतिरोध मंच के **विजय पाराशर** व **राजेश यादव,** 'मुक्तिगान' के **हितेन्द्र उपाध्याय,** सामाजिक कार्यकर्ता **सुनील गौतम,** विकास अध्ययन संस्थान के **प्रदीप भार्गव,** राजस्थान कालेज के छात्र नेता **विनोद गुर्जर,** बैंककर्मी **नरेश गुलाटी, सोमदत्त खासपुरिया** व **बी.एल. शर्मा, डा. रितुम गर्ग,** शिक्षक **लालचन्द मीणा** सहित डेढ़ सौ से अधिक लेखकों, पत्रकारों, सामाजिक कार्यकर्ताओं व छात्रों ने गौतमबुद्ध नगर जिले के प्रशासनिक अधिकारियों के पास विरोध पत्र भेजकर दोषी पुलिसकर्मियों के खिलाफ कार्रवाई की मांग की।

नागपुर : पत्रकारों ने एकजुट आवाज उठायी

हिन्दी दैनिक **लोकमत समाचार** और अंग्रेजी दैनिक **लोकमत टाइम्स** से जुड़े 53 पत्रकारों ने एक ज्ञापन पर हस्ताक्षर कर विभिन्न अधिकारियों के पास भेजा। ज्ञापन में कहा गया है कि ऐसी घटनाओं से इस आरोप की पुष्टि होती है कि पुलिस केवल धनपतियों के हितों की रक्षक बन गयी है। ज्ञापन में जिम्मेदार पुलिसकर्मियों के खिलाफ कड़ी कार्रवाई की मांग की गयी है जिससे ऐसी घटनाओं की पुनरावृत्ति पर अंकुश लग सके।

झुंझनू (राजस्थान) से प्राप्त एक पत्र

अमर शहीद भगतसिंह विचार मंच भी 'बिगुल' के साथ है। नोएडा में 'बिगुल' के कार्यकर्ताओं पर पूंजीपतियों से मिलकर पुलिस ने जो अत्याचार किया, मंच उसका घोर विरोध करता है। हम उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री मुलायम सिंह यादव से आशा करते हैं कि वह अखबार पर होने वाले अत्याचारों को रोकेंगे, अत्याचार करने वाली पुलिस को सख्त सजा देंगे और जनता का समर्थन करेंगे।

यह अखबार भारत के सर्वहारा वर्ग का है और इसकी रक्षा करना हर प्रगतिशील व्यक्ति का कर्तव्य है।

आपका साथी,
सांवल राम भारतीय
स्वतंत्रता सेनानी एवं संयोजक,
अमर शहीद भगतसिंह विचार मंच
नवलगढ़, राजस्थान

राद्नीक एक्सपोर्ट का हाल–जहं-जहं देखा एकै लेखा!

बिगुल संवाददाता

नोएडा। नोएडा के फैक्ट्री इलाकों में सब जगह कमोबेश एक जैसी तस्वीर उभरकर सामने आती है–जहं-जहं देखा एकै लेखा! सभी फैक्टरियों में काम के एक जैसे लम्बे जानलेवा घंटे, मालिकों-सुपरवाइजरों की ज्यादा से ज्यादा काम लेने की वही हवस और इस या उस बहाने मेहनताने का एक हिस्सा हड़प कर जाने की तरकीबें। थक-हारकर मजबूरी में गांव-देहात को छोड़कर नोएडा जैसे शहरों में आये लोगों को अनुशासन सिखाने और मजदूर बनाने के नाम पर जानवर बना दिया गया है और उन्हें एक-एक करके उन सभी चीजों से दूर कर दिया जाता है जिनसे मनुष्य के रूप में उनकी पहचान होती हो। पी. एफ., ईएसआई कार्ड, और जूते-वर्दी की सुविधा, आठ घंटे का काम, साप्ताहिक अवकाश और दूसरे अर्जित लाभ तो यहां के मजदूरों के लिए किसी परीकथा से कम नहीं। भयावह सच्चाई तो यह है कि मजदूर के मन में हर समय यह आशंका बनी रहती है कि पता नहीं उसे किस क्षण काम से निकाल दिया जाये।

यहां सेक्टर-59 (डी-35) में स्थित राद्नीक एक्सपोर्ट नामक फैक्टरी के मजदूरों की हालत भी यही है। इस फैक्टरी के मालिक का नाम विनोद कपूर है। इसके पास सेक्टर-60 के बी-13 के अलावा दिल्ली में तीन फैक्टरियां हैं, जिनमें दो ओखला औद्योगिक क्षेत्र में हैं।

सेक्टर-59 स्थित फैक्टरी में कुल 350 मजदूर कार्यरत हैं जिनमें से 100 पुरुष और 50 महिलाओं को मिलाकर सिर्फ 150 मजदूर परमानेंट हैं। 150 की संख्या में सिलाई कारीगर दिहाड़ीदार हैं। 50 श्रमिक पीस रेट पर सिलाई का काम करते हैं। पिछले पांच वर्षों से चालू इस फैक्टरी में साप्ताहिक अवकाश की कोई व्यवस्था नहीं है। कोढ़ में खाज वाली स्थिति यह है कि नरक जैसी जीवनस्थितियों में खटते रहने के बावजूद अगर कोई मजदूर छुट्टी पर घर जाता है तो इस बात की कोई गारंटी नहीं होती कि लौटने पर उसे काम मिलेगा ही। खासकर सिलाई कामगारों को काम नहीं होने पर बिना किसी मुरव्वत के हटा दिया जाता है।

राद्नीक एक्सपोर्ट में कार्यरत एक श्रमिक ने 'बिगुल' प्रतिनिधि को बताया कि यहां के बीच के फ्लोर में हमेशा जानलेवा उमस रहती है और कोई भी मजदूर काम नहीं करना चाहता। लेकिन उसे करना पड़ता है क्योंकि मन मसोसकर और छाती पर पत्थर रखकर वह खटेगा नहीं तो अस्तित्व बनाये रखने के संघर्ष में हार जायेगा। इस फ्लोर पर दो लाइनों में सिर्फ 15 पंखे हैं। मजदूरों ने एक बार जब शिकायत भरे लहजे में कार्यस्थल की दुश्वारियां बतायीं तो मैनेजमेण्ट के लोगों ने बगैर कोई मानवीय सरोकार दिखाये टका सा जबाव दे दिया, "यहां इस तरह की बातें करने की इजाजत नहीं है।" और तो और मजदूरों के लिए साइकिल रखने की भी कोई समुचित व्यवस्था नहीं है और आये दिन किसी न किसी की साइकिल गायब होती रहती है। प्रबंधन इस तरह की दिक्कतों पर ध्यान ही नहीं देता और दे भी क्यों जब वह मजदूरों को मनुष्य समझने की बजाय मुनाफा पीटने की प्रक्रिया में निर्जीव-बेजान औजार भर समझता है।

अपनी जगह-जमीन से उजड़कर शहरों में आने वाले मजदूरों को कदम-कदम पर श्रम की खुली निर्मम लूट पर टिकी पूंजीवादी व्यवस्था के मनुष्य विरोधी चेहरे से परिचित कराया जाता है। दिहाड़ी और पीस रेट पर काम करने वाले कारीगरों को ठेकेदार काम पर लगाता है और इस 'एहसान' के एवज में वह दो दिन की दिहाड़ी हजम कर जाता है।

राद्नीक एक्सपोर्ट में स्थानीय बाजारों की बजाय अधिकतर निर्यात के लिए माल तैयार किया जाता है। लुटेरे अमीर देशों ने अपने यहां के निर्माताओं-उत्पादकों को संरक्षण देने के लिए पर्यावरण संरक्षण, श्रम की मानवीय दशाओं और श्रमिकों की सामाजिक सुरक्षा की आड़ में तरह-तरह की व्यवस्थाएं कर रखी हैं ताकि भारत जैसे तीसरी दुनिया के देशों से आने वाले मालों से उनके बाजार न पट जायें। ऐसे में होता क्या है कि राद्नीक एक्सपोर्ट का माल निर्यात के लिए जो बायर खरीदता है वह चाहता है कि सौदा कम से कम रेट पर पट जाये जबकि मालिक का हित इस बात में होता है कि कीमत ऊंची मिले। बायर और मालिक के बीच मुनाफे के बंटवारे को लेकर चलने वाली रस्साकशी का किस्सा एक मजदूर ने हमारे प्रतिनिधि को सुनाया : "सबेरे के नौ बजे थे। हम लोगों ने फैक्टरी पहुंचने पर देखा कि फैक्टरी को दुल्हन की तरह सजाया जा रहा है। जहां बाकी दिन मजदूर कहीं भी बैठकर भोजन कर लिया करते थे वहीं आज उनके लिए कुर्सी-मेज की व्यवस्था हो रही थी और सभी मजदूरों से परमानेंट के कागज पर हस्ताक्षर करवाया जा रहा था। फोटो पहले से ही फाइलों पर चिपके हुएथे। पूछने पर साथी मजदूर ने बताया : "कुछ नहीं यार, बायर का आदमी आने वाला है। यह सारा टीमटाम उसी की दिखाने के लिए है।" इतने में सुपरवाइजर आ जाता है और हमें अपनी-अपनी मशीनों पर जाने के लिए कहता है। थोड़ी देर बाद जीएम आकर नरमी भरे स्वर में सभी

को काम बंद करके अपने पास आने के लिए कहता है। जब मजदूर उसके पास पहुंचते हैं तो जीएम कहता है–देखिए आप लोगों में से कुछ पुराने हैं–उन्हें मालूम है कि सेल्स टैक्स अधिकारी आने वाला है। आप लोगों को इधर-उधर नहीं जाना है, बस अपना काम करते रहना है। अगर सैलरी के बारे में पूछा जाये तो बोलना चार हजार। ओवरटाइम लगने के बारे में जवाब बनता है दो घंटे। रविवार को छुट्टी रहती है, ओवरटाइम का पैसा डबल मिलता है। वेतन सात तारीख को मिलता है, पीएफ कटता है। इसके साथ दबे स्वर में धमकी देते हुए वह कहता है आखिर आप लोगों को भी तो काम करना है।

इसके बाद वह इस बात की तस्दीक करता है कि मजदूरों ने उसके द्वारा पढ़ाये गये पाठ को ठीक तरह से समझा है कि नहीं। इस क्रम में वह एक श्रमिक को बुलाकर वेतन-सुविधाओं के बारे में चंद एक सवाल करता है और संतुष्ट हो जाने पर उसकी पीठ थपथपाता है।

इसके कुछ देर बाद सेल्स टैक्स अफसर आता है उसके साथ दो और आदमी भी थे। एक के हाथ में कागज और फाइल वगैरह थी और वह चारों तरफ बड़े गौर से देख रहा था। वह मजदूरों से इस अंदाज में सवाल पूछ रहा था मानो उसे इस बात का पता ही न हो कि यहां पर पीस रेट और दिहाड़ी पर काम होता है और कोई नियम-कानून नहीं है।

नोएडा में काम की जो स्थितियां हैं उनके बारे में मुंहामुंही मजदूरों को बारीक ब्यौरों समेत सभी बातें मालूम हैं। मजदूरों के शोषण-उत्पीड़न और दमन में सरकारी अमला किस तरह से फैक्टरी मालिकों का साथ देता है अनुभव के धरातल पर वे इस बात को भी बखूबी जानते हैं। लेकिन दिक्कत यह है कि देशव्यापी तो छोड़िये इलाकाई पैमाने पर भी मजदूर आंदोलन की कहीं कोई सुगबुगाहट नहीं। लेकिन जैसे ही मजदूरों को कोई प्लेटफार्म बनता नजर आयेगा वे अपनी पस्तहिम्मती छोड़कर जरूर सक्रिय होंगे और अपनी नफरत और गुस्से को आवाज देंगे।

●

पूंजी की डायन निगल गयी जयचन्द और उसके परिवार को

बिगुल संवाददाता

सारनाथ, वाराणसी। पावरलूम खरीदकर जिन्दगी को बेहतर बनाने की चाहत ने जयचन्द को साहूकारों-बैंकों के कर्ज में इतने गहरे डुबो दिया कि मौत ही उसे उबार सकी। पहले उसकी बीवी ने बच्ची समेत मौत को खुद गले लगा लिया फिर उसने जहर खाकर हमेशा-हमेशा के लिए खुद को कर्जमुक्त कर लिया।

घटना गौतम बुद्ध की प्रथम उपदेश स्थली सारनाथ से मात्र चार किमी. दूर स्थित गांव छाहीं की है। मरने से पहले जयचन्द ने अपने 'सुसाइड नोट' में लिखा था, "कर्ज और गरीबी से तंग आकर पत्नी और बच्ची के साथ आत्महत्या कर रहा हूं।"

जिन्दगी के आखिरी सफर पर चल देने का फैसला जयचन्द ने अचानक नहीं लिया था। वह तो भरपूर जिन्दगी जीना चाहता था। इसीलिए घर-परिवार के बड़े लोगों के लाख मना करने पर भी उसे खुद अपना पावरलूम खरीदने की धुन सवार हुई। पहले वह दूसरे के पावरलूम पर मजदूरी कर गुजर-बसर कर रहा था। लेकिन वह मुनाफे और बाजार की दुनिया के बेरहम नियम-कानूनों का मुकाबला सिर्फ बेहतर जिन्दगी की चाहतों के बूते करने की ठान चुका था। इसलिए तमाम मशविरों की अनदेखी कर उसने आखिरकार कर्ज लेकर पावरलूम खरीद ही लिया।

जयचन्द के बड़े भाई कमला ने यह जोखिम लेने से उसे आगाह किया था। "हम लोग मजूरी करने वाले लोग हैं, धन्धे का झटका बर्दाश्त नहीं कर पायेंगे। हमारे पास न जमीन है न जायदाद। किस आधार पर कर्ज लोगे," पूछा था कमला ने। पर जल्दी-जल्दी अमीर बनने की चाह ने कर्ज के मकड़ जाले में जयचन्द को ऐसा फंसाया कि जीते-जी उससे बाहर निकलना नामुमकिन हो गया।

जयचन्द ने भागदौड़ कर सन् 2000 में सेंट्रल बैंक से चालीस हजार रुपये पास करवा लिया था। हालांकि इसमें से भी घूस-घास काटकर सिर्फ बत्तीस हजार रुपये ही उसके हाथ लगे थे। इससे दो पावरलूम उसने खरीदे। निजी सूदखारों से भी इतनी ही राशि कर्ज लेकर दो पावरलूम और खरीदा उसने। जयचंद के साथ ही कमला और उनके बाबूजी भी दूसरे का काम छोड़कर अपने लूम पर काम पर लग गये।

कमला ने बताया कि छह महीने तक तो सब कुछ ठीक चला क्योंकि इस दौरान बिजली बीस घण्टे रहती थी। लेकिन फिर बिजली सिर्फ छह घण्टे रहने लगी, वह भी अनियमित। कभी-कभी तो कई दिनों तक बिजली नहीं आती। नतीजतन पार्टी को माल समय पर नहीं मिल पा रहा था। फिर आर्डर मिलना बन्द हो गया। मंदा होने का दूसरा कारण था जयचन्द के पास साधारण मशीनों का होना। शहर के लूम डिजाइनर माल उतने में ही बेचते थे जितने में साधारण लूम से बने माल। इस कारण भी जयचन्द के माल की मांग कम हो गयी।

बाजार से होड़ के चक्कर में जयचन्द ने काशी ग्रामीण बैंक और निजी सूदखोरों से लाखों रुपये कर्ज लेकर डिजाइनिंग मशीन लगायी। यह मशीन लेने से काम में कुछ तेजी जरूर आयी पर बिजली का संकट और गहरा गया। दूसरी तरफ आर्डर इतना नहीं आ रहा था कि जेनरेटर खरीदा जाये और पार्टी को माल समय से दिया जाये। नतीजतन पार्टी अपना आर्डर शहर में देने लगी। इस तरह काम मंदा होता गया और कर्ज जमा करना तो दूर उसका सूद चुकाने के लाले पड़ गये।

मजबूर जयचन्द ने बीसी का काम शुरू किया। (कुछ दुकानदार मिलकर आपस में एक निश्चित रकम जमा करते हैं, जिसको जरूरत होती है वह बोली लगाकर घाटा सहकर पैसा ले लेता है। इसी को बीसी चलाना कहते हैं।) अब उसने बीसी से कर्ज लेकर दुकान चलाना शुरू किया। वीडियो और जनरेटर किराये पर चलवाने लगा।

बैंकों और निजी सूदखोरों को जयचन्द की इस बेचारगी पर भला क्यों रहम आता? वे तगादा करने लगे। बैंक की किस्त जमा न कर पाने के कारण घटना से कुछ ही रोज पहले वह पन्द्रह दिन तक जेल रह आया था। आये दिन कोई न कोई तगादा के लिए आ धमकता। धमकियां मिलने लगीं। जयचन्द कर्ज कहां से चुकाता? उसकी कुल जायदाद मिट्टी के कमरे ही तो थे। सात बिस्वा जमीन थी, वह भी पन्द्रह हजार रुपये के रेहन पर रखी हुई थी। इस वजह से घर पर तनाव रहने लगा। पत्नी से आये दिन झगड़ा होने लगा।

जिस दिन हादसा हुआ उस दिन भी पत्नी से जयचन्द का देर तक झगड़ा होता रहा था। उसके भाई ने डांट-डपटकर उसे घर से बाहर भेज दिया था। दो घण्टे बाद लौटा तो कमरे में पत्नी व बच्ची की छत से लटकती लाश मिली। हालांकि जयचन्द खुद भी यही सोचकर आया था कि पत्नी और बच्ची को जहर पिलाकर खुद भी पी लेगा। इसलिए जैसे ही उसने अपने परिवार को मरा पाया तो तत्काल पाकेट से जहर निकालकर खा लिया... और जयचन्द हमेशा-हमेशा के लिए कर्जमुक्त हो गया।

जयचन्द और उसके परिवार की इस त्रासदी के लिए किसे जिम्मेदार ठहराया जाये? जयचन्द का भाई कमला इसके लिए जयचन्द की जल्दी-जल्दी अमीर बनने की चाहत को जिम्मेदार ठहरा रहा है। और भी बहुत से लोगों की भी यही सोच होगी। लेकिन जिन्दगी को बेहतर बनाने की चाहत कोई बेजा चाहत तो नहीं? जयचन्द की चाहत बेजा नहीं थी। उसका कसूर यह था कि वह मुनाफे और बाजार की बेरहम दुनिया को सिर्फ अपनी चाहतों के बूते चुनौती देने चला था। जब तक वह इस पूंजीवादी तर्क को समझता कि बड़ी मछली छोटी मछली को खाकर ही जिन्दा रहती है, तब तक वह कर्ज के मकड़जाले में इस बुरी तरह फंस चुका था। जयचन्द और उसके परिवार को उसकी चाहतों ने नहीं पूंजी की डायन ने निगल लिया।

जयचन्द का परिवार अकेला नहीं है जो पूंजी की डायन का निवाला बन गया। देश भर में सैकड़ों बुनकर परिवारों की यही गत हुई है। जब से भूमण्डलीकरण की नीतियां लागू हुई हैं तब से छोटे पावरलूम मालिकों और बुनकरों की तबाही का एक नया दौर शुरू हुआ है। बड़ी पूंजी के हाथों छोटी पूंजी वालों और बुनकर मजदूरों की तबाही की कहानी कई राष्ट्रीय कहे जाने वाले अखबारों में आये दिन छपती रहती है।

जयचन्द मुनाफे की दुनिया के रंग-ढंग को नहीं समझ सका। वह यह नहीं समझ सका कि एक गरीब-मजदूर अकेले-अकेले अमीर और खुशहाल होने का सपना नहीं देख सकता। पूंजी की इस राक्षसी गुलामी से मुक्ति की राह पर अकेले-अकेले नहीं चला जा सकता। यह साझा लड़ाई है। मिलजुलकर एक साथ कदम बढ़ाने से ही मुक्ति की राह आसान होगी। जिस दिन मेहनतकश अवाम इस सच्चाई को दिल में उतार लेगा उस दिन के बाद से दूसरा जयचन्द आत्मघाती राह पर चलने के बारे में सोचेगा भी नहीं। ●

अब एच.एम.टी. पर भी बन्दी की तलवार

मजदूर संघर्ष की राह पर

बिगुल संवाददाता

रानीबाग (नैनीताल)। उत्तरांचल राज्य के रानीबाग में स्थित घड़ी बनाने वाला एम.एम.टी. कारखाना भी अब बंदी के कगार पर पहुंचता जा रहा है। यहां के हालात ऐसे बन चुके हैं कि उसे कभी भी औने-पौने दाम पर निजी हाथ में सौंपा जा सकता है। ऋषिकेश स्थित राज्य की सार्वजनिक क्षेत्र की सबसे बड़ी दवा निर्माता कम्पनी आई.डी.पी.एल. की बंदी के बाद सार्वजनिक क्षेत्र के इस दूसरे बड़े कारखाने की स्थिति बेहद दयनीय हो चुकी है और यहां के कर्मचारियों का छह-छह माह तक का वेतन बकाया हो चुका है। उन्हें हर माह वेतन के लिए संघर्ष करना पड़ता है। कारखाने के श्रमिकों का पिछली 18 मई से लगातार धरना-प्रदर्शन जारी है।

देश के सार्वजनिक क्षेत्र के तमाम उपक्रमों की तरह इस कारखाने को भी बड़े साजिशाना तरीके से बन्द करने की मुहिम चल रही है। एक समय में देश की नामी-गिरामी इस कम्पनी की मार्केटिंग को सबसे पहले प्रभावित किया गया। फिर निर्माण के लिए आवश्यक 'कम्पोनेन्ट' समय से उपलब्ध नहीं कराये गये, तो कभी कार्यशील पूंजी का अभाव पैदा कर दिया गया।

सरकारी साजिश को समझने के लिए कुछ तथ्य पर्याप्त हैं। 'कस्टम एण्ड सेण्ट्रल एक्साइज डिपार्टमेण्ट' ने अपने 62 लाख रुपये बकाया भुगतान के एवज में कारखाने की 16,495 घड़ियां, जिनकी कीमत लगभग एक करोड़ रुपये है, सीज कर दीं। 11 वर्ष पूर्व 1992 में भी एक्साइज डिपार्टमेण्ट ने लगभग 4 करोड़ मूल्य की घड़ियां व उनके पुर्जे सीज कर दिये थे जो कारखाने के स्टोर में जंग खा रही हैं। यह मामला दिल्ली स्थित ट्रिब्यूनल में अभी भी विचाराधीन है। उधर बिजली विभाग ने 22 लाख रुपये बिजली बिल के बकाये के कारण बिजली आपूर्ति भंग कर दी। केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल ने 6-8 करोड़ रु. बकाया होने के कारण कारखाने से अपने सुरक्षाकर्मियों को वापस बुलाने का ऐलान कर दिया है।

हालत यह है कि श्रमिकों को जबरिया वीआरएस देकर निकाला जा रहा है। छह माह पूर्व तो एक झटके में 178 श्रमिकों व 18 अधिकारियों को "स्वैच्छिक" अवकाश दे दिया गया। प्रबंधन वेतन भुगतान न करने सहित लगातार ऐसे हालात पैदा कर रहा है जिससे कर्मचारी मजबूरन वीआरएस लेकर खिसक लें। फिलहाल यहां 618 श्रमिक व अधिकारी कार्यरत हैं।

उल्लेखनीय है कि 2000 में एच.एम.टी. समूह को सभी इकाइयों के लिए केन्द्र सरकार द्वारा 1150 करोड़ रु. का पुनरुद्धार पैकेज मिला था जिसमें से रानीबाग इकाई को महज 19 करोड़ रु. प्राप्त हुए थे। इस धनराशि में से 5 करोड़ रु. वीआरएस पर तथा 10 करोड़ रुपये भविष्य निधि व पेंशन के मदों में खर्च कर दिया गया। कारखाने द्वारा 80 लाख रु. प्रतिमाह ब्याज के रूप में चुकाया जा रहा है।

यहां के मजदूरों द्वारा कारखाने के पुनरुद्धार के लिए प्रबंधन व सरकार को कई सुझाव भेजे गये, लेकिन सभी पर खामोशी है। अभी हाल में कारखाने की यूनियन 'एच.एम.टी. श्रमिक संघ' ने केन्द्रीय योजना आयोग के पास पुनरुद्धार के लिए 75 करोड़ रु. का प्रस्ताव भेजा है जिसमें से तकरीबन 41 करोड़ रु. विभिन्न मदों की देनदारियों के भुगतान व 34 करोड़ रु. कार्यशील पूंजी के रूप में मांगा गया है, लेकिन आयोग मौन है।

दरअसल, उदारीकरण के इस दौर में, जनता के खून-पसीने से खड़े हुए सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों पर देश और दुनिया के पूंजीवादी लुटेरों की लालची निगाहें लगी हुई हैं। सरकारें स्वामिभक्त की तरह इनकी सेवा में जुटी हुई हैं। वे ऐसे ही तीन-तिकड़म से इन उपक्रमों को घाटे में पहुंचाकर, कमजोर बनाकर बन्दी के कगार पर पहुंचा दे रही हैं और उन्हें निजी हाथों में सौंप दे रही हैं। ●

उत्तरांचल में उद्योगों की बन्दी व पलायन जारी

भारी संख्या में मजदूर सड़कों पर

बिगुल संवाददाता

हल्द्वानी। उत्तरांचल गठन के बाद से ही राज्य में उद्योगों की बंदी व पलायन अब आम बात बन चुकी है। यहां के मजदूरों के सिर पर छंटनी की तलवार लटकी हुई है और लगातार व भारी संख्या में लोग सड़कों पर धकेले जा रहे हैं।

1972 में काठगोदाम में स्थापित **'ट्रांस केबल्स कारखाना'** ढाई साल से बन्द पड़ा है और बिक्रीकर के 2.10 लाख रुपये बकाये के कारण जिलाधिकारी ने इसकी कुर्की का आदेश जारी कर दिया है। डेढ़ साल पूर्व 20 लाख रुपये बकाये के कारण यहां की बिजली भी कट चुकी है।

विद्युत कंडक्टर, वीजल, रैबिट व रैकून बनाने वाले सार्वजनिक क्षेत्र के इस कारखाने में 47 मजदूर काम करते रहे हैं जिनका तीन माह का वेतन तक रुका हुआ है। अतीत में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा कर्ज/अनुदान के रूप में दिये गये साढ़े तीन करोड़ रुपये पर चार करोड़ का ब्याज हो चुका है। मजदूरों ने ई.पी.एफ. की 10 लाख राशि का भुगतान तक नहीं हुआ है। यहां के मजदूर अनिश्चित भविष्य के साथ बदहाली के दौर से गुजर रहे हैं।

काशीपुर में 1992 में स्थापित **'जिंक सल्फेट कारखाना'** और कर्णप्रयाग और भवाली के **'पैकिंग केस कारखाने'** लम्बे समय से बन्द हैं। इसका ठीकरा उत्तर प्रदेश व उत्तरांचल के बीच परिसंपत्तियों के बंटवारे में कमी पर फोड़ा जा रहा है। एग्रो आधारित इन कारखानों में मानव, ट्रेक्टर व बैल चलित कृषि उपकरणों, कृषि रक्षा उपकरणों व विभिन्न कम्पनियों के ट्रेक्टरों, स्थानीय निकाय के सफाई उपकरणों तथा पाली हाउसेज का उत्पादन होता रहा है।

उत्तरांचल में स्थित भवाली, कर्णप्रयाग, हल्द्वानी, रुद्रपुर, काशीपुर हरिद्वार व देहरादून की इकाइयों से पहले लगभग दो करोड़ रुपये का वार्षिक कारोबार होता था जो अब घटकर डेढ़ करोड़ रुपये रह गया है। राज्य बनने के लगभग तीन साल बाद भी परिसम्पत्तियों के झमेले में ये कारखाने दुर्दशा के शिकार हैं और यहां के मजदूरों का भविष्य अधर में लटका हुआ है।

पिथौरागढ़ की निजी क्षेत्र के दोनों मैग्नेसाइड कारखाने बन्द हैं और 'मैग्नेसाइड व मिनरल्स लि.' के मजदूर संघर्षरत हैं। एच.एम.टी. कारखाने पर बन्दी की तलवार लटकी हुई है। सलोरा, नैना सेमीकण्डक्टर, उषा ग्रुप के दोनों कारखाने, प्रकाश पिक्चर ट्यूब सहित तमाम कारखाने यहां से पलायन कर चुके हैं। एक चौंकाने वाला आंकड़ा यह है कि पिछले दस साल के भीतर राज्य की 16 हजार लघु इकाइयां बन्द हो चुकी हैं।

राज्य सरकार ने प्रदेश की छह जल विद्युत परियोजनाओं को निजी हाथों में सौंपने का मन बना लिया है। इसके अतिरिक्त कई छोटी जलविद्युत परियोजनाएं भी निजी हाथों में सौंपी जाने वाली हैं। बड़ी परियोजनाओं के लिए विदेशी कम्पनियों से सरकार ने करार भी कर लिया है।

वैसे भी राज्य के सभी उद्योगों को देश के पूंजीपतियों की सर्वोच्च संस्था 'फिक्की' ने "गोद" ले लिया है और राज्य के "विकास पुरुष" कांग्रेसी मुख्यमंत्री उनसे बागवानी आदि को भी गोद लेने की बात कर रहे हैं। उधर प्राकृतिक सम्पदाओं पर माफियाओं व स्वयंसेवी संस्थाओं के माध्यम से बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का कब्जा बढ़ता जा रहा है।

कुल मिलाकर, इस नये राज्य में निजीकरण का जोर बढ़ता जा रहा है और मेहनतकश आबादी लगातार बदहाली का शिकार है। ●

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के जन्मदिवस (9 सितम्बर) के अवसर पर

रपट

अंग्रेजियत की संस्कृति और दिमागी गुलामी के खिलाफ
राहुल फाउण्डेशन और जनचेतना का सांस्कृतिक जन अभियान

हमारे संवाददाता

"अंग्रेजियत की नयी अभिजन संस्कृति के विरुद्ध संघर्ष वास्तव में आर्थिक नवउपनिवेशवादी कुचक्र के विरुद्ध एक जरूरी संघर्ष है। हमें अपने श्रम और संगठित शक्ति के सहारे पूंजी आश्रित प्रचार-माध्यमों का मुकाबला करना होगा। हमें अपनी भाषा के साहित्य को आगे बढ़ाने और जन-जन तक पहुंचाने का संकल्प लेना होगा।" इस संकल्प और उद्देश्य के साथ दिल्ली, उत्तर प्रदेश, उत्तरांचल और राजस्थान में **राहुल फाउण्डेशन** और **जनचेतना** की ओर से एक पखवारे का सांस्कृतिक जन-अभियान चलाया गया।

इस अभियान के तहत विभिन्न स्थानों पर पोस्टर एवं पुस्तक प्रदर्शनियों के साथ नुक्कड़ नाटक व नुक्कड़ सभाओं का आयोजन किया गया, प्रभात फेरियां निकाली गयीं एवं व्यापक पर्चा वितरण किया गया। कई स्थानों पर जन कविताओं की भावपूर्ण नुक्कड़ प्रस्तुतियां भी की गयीं। विभिन्न स्थानों से हमारे संवाददाताओं द्वारा भेजी गयी संक्षिप्त रपटें हम नीचे दे रहे हैं।

दिल्ली-नोएडाः राहुल फाउण्डेशन और जनचेतना के कार्यकर्ताओं ने दिल्ली विश्वविद्यालय के नार्थ कैम्पस के रामजस कालेज एवं कला संकाय परिसर में जगह-जगह क्रान्तिकारी समूहगान प्रस्तुत करते हुए पर्चा वितरण किया और नुक्कड़ सभाएं कीं।

नोएडा में अमर उजाला, दैनिक जागरण, राष्ट्रीय सहारा दैनिकों के कार्यालयों के सामने तथा सेक्टर-53 स्थित 'कंचनजंघा' आवासीय सोसायटी के भीतर 'जनचेतना' की पुस्तक प्रदर्शनी लगायी गयी एवं पर्चा वितरण किया गया। इसके अलावा साप्ताहिक बाजारों में भी व्यापक रूप से पर्चा वितरण किया गया।

लखनऊ : यहां एक सितम्बर को अभियान की शुरुआत लखनऊ विश्वविद्यालय में नुक्कड़ सभा के आयोजन से हुई। यहां कविता पोस्टर प्रदर्शनी एवं पुस्तक प्रदर्शनी भी लगायी गयी। कार्यकर्ताओं ने पूरे पखवारे भर साइकिल जत्थे के रूप में महानगर के विभिन्न सरकारी कार्यालयों, शिक्षण संस्थाओं और आवासीय कालोनियों मुहल्लों में अभियान के तहत विभिन्न कार्यक्रम प्रस्तुत किये। अनेक स्थानों पर देश-विदेश के जनकवियों की चुनिन्दा कविताओं की नुक्कड़ प्रस्तुतियां भी की गयीं। निराला की 'बहने दो', वीरेन डंगवाल की 'इतने भले नहीं बन जाना साथी', पाश की 'सबसे खतरनाक', उदय प्रकाश की 'राज्यसत्ता', पाब्लो नेरूदा की 'गलियों में बहता लहू', अली सरदार जाफरी की 'कौन आजाद हुआ', केदारनाथ अग्रवाल की 'जो जीवन की धूल चाटकर बड़ा हुआ है' आदि कविताएं विशेष रूप से सराही गयीं।

इलाहाबाद : यहां राहुल फाउण्डेशन और जनचेतना के कार्यकर्ताओं ने पूरे पखवारे भर अपनी भाषा और संस्कृति पर देशी-विदेशी पूंजी के चाकर सत्ताधारियों द्वारा चौतरफा हमलों के खिलाफ संघर्ष करने का आह्वान किया। अभियान की शुरुआत सिविल लाइन्स क्षेत्र में नुक्कड़ सभा के आयोजन एवं पर्चा वितरण से की गयी। कार्यकर्ताओं ने सत्ताधारियों की साजिश के प्रति सचेत करते हुए कहा कि कैसी विडम्बना है कि गुलामी के दिनों की काली विरासत को सामाजिक हैसियत का प्रतीक, प्रगति की बुनियादी शर्त और सुरक्षित भविष्य की गारण्टी बना दिया गया है।

अभियान के तहत कार्यकर्ताओं ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय परिसर और महालेखा परीक्षक कार्यालय सहित कई स्थानों पर असगर वजाहत के नुक्कड़ नाटक 'देश को आगे बढ़ाओ' का मंचन करने के साथ ही, कविताओं की नुक्कड़ प्रदर्शनी और पुस्तक प्रदर्शनी का आयोजन किया गया।

जयपुर : शहर में एक सितम्बर को अभियान की शुरुआत प्रभातफेरी से हुई। इसी दिन दोपहर में उद्योग भवन में सफदर हाशमी लिखित नुक्कड़ नाटक 'औरत' की प्रस्तुति हुई। जयपुर विश्वविद्यालय परिसर, भवानी निकेतन महाविद्यालय सहित शहर के रामनिवास बाग, हवा सड़क, सोडाला, चेतना बस्ती, जवाहर नगर आदि मुहल्लों एवं विभिन्न कार्यालयों में नुक्कड़ सभाएं, नुक्कड़ नाटक, कविताओं की प्रस्तुति, और पोस्टर एवं पुस्तक प्रदर्शनियों का आयोजन किया गया।

विभिन्न नुक्कड़ सभाओं को सम्बोधित करते हुए राहुल फाउण्डेशन के कार्यकर्ताओं ने कहा कि आज पेप्सी-कोक-बर्गर की संस्कृति के साथ अंग्रेजियत की संस्कृति का घटाटोप है। जो ताकतें जनता की लूट और गुलामी के नये-नये विधान रच रही हैं, वही आम लोगों की भाषा और संस्कृति पर हमले कर रही हैं। इसके खिलाफ संघर्ष के लिए वक्ताओं ने एकजुट होने का आह्वान किया।

रुद्रपुर(ऊधमसिंहनगर) : यहां भी 1-13 सितम्बर तक विभिन्न स्थानों पर सचल पोस्टर एवं पुस्तक प्रदर्शनियों के आयोजन के साथ ही नुक्कड़ कविता पाठ एवं नुक्कड़ सभाओं में वक्ताओं ने अंग्रेजियत की संस्कृति एवं दिमागी गुलामी के खिलाफ संघर्ष को जनमुक्ति संघर्ष का एक अहम मोर्चा बताते हुए इस वैचारिक-सांस्कृतिक मोर्चे पर सन्नद्ध हो जाने के लिए सभी स्वातंत्र्य प्रेमी, मुक्तिकामी स्वाभिमानी आम नागरिकों का आह्वान किया।

14 सितम्बर को इसी अभियान के तहत 'अनुराग बाल पत्रिका' द्वारा आयोजित प्रेमचंद स्मृति बाल/किशोर निबन्ध प्रतियोगिता का पुरस्कार वितरण जवाहर नवोदय विद्यालय के एम.पी. हाल में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर विचार गोष्ठी भी आयोजित की गयी एवं बच्चों द्वारा नाटक और गीतों की प्रस्तुति भी की गयी।

गोरखपुर : राहुल फाउण्डेशन की अभियान टोली ने विभिन्न स्थानों पर नुक्कड़ सभाओं का आयोजन करने के साथ ही पोस्टर एवं पुस्तक प्रदर्शनियों का आयोजन किया एवं नुक्कड़-चौराहों पर खड़े होकर व्यापक पर्चा वितरण किया। अभियान की शुरुआत साइकिल मार्च से हुई। कार्यकर्ता विभिन्न नारे लिखी तख्तियां लगाये जनचेतना के जाफरा बाजार स्थित केन्द्र से बख्शीपुर, अलीनगर, सिनेमा रोड, गोलघर, टाउनहाल, बैंक रोड आदि स्थानों से गुजरे तथा जगह-जगह रुककर नुक्कड़ सभाएं कीं और पर्चे बांटे। विभिन्न कालोनियां- मुहल्लों और दफ्तरों में जनकविताओं की नुक्कड़ प्रस्तुतियां भी की गयीं।

नुक्कड़ सभाओं में वक्ताओं ने कहा कि अंग्रेजी राज से आजादी के छप्पन साल बाद भी प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च एवं तकनीकी शिक्षा तक अंग्रेजी माध्यम शिक्षा की गुणवत्ता के लिए अनिवार्य बना हुआ है। हिन्दी और सभी भारतीय भाषाओं की स्थिति दोयम दर्जे की बनी हुई है। अखबार एवं तमाम इलेक्ट्रानिक माध्यम हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं को सुनियोजित ढंग से विकृत एवं भ्रष्ट बनाने का काम कर रहे हैं। हिन्दी को अंग्रेजी की मिलावट से भ्रष्ट करने के साथ ही उसे जटिल और संस्कृतनिष्ठ बनाकर आम जनता से दूर किया जा रहा है।

अभियान के तहत वितरित किये पर्चे में कहा गया है कि "अपनी भाषा को लेकर हीनताबोध से ग्रस्त कोई कौम अपनी मुक्ति के लिए प्रभावी ढंग से लड़ नहीं सकती। भाषा पर यह हमला, दरअसल, हमारे विचारों और हमारी संस्कृति पर हमला है। अपनी मुक्ति के बारे में आम जन अपनी भाषा में ही सोच सकते हैं। स्मृति, स्वप्न और कल्पना का माध्यम सिर्फ अपनी मातृभाषा ही हो सकती है। इसलिए, अपनी भाषा की मुक्ति का प्रश्न वास्तव में अपने चिन्तन, अपने स्वप्नों और अपने कल्पनालोक की मुक्ति का प्रश्न है। मुक्ति-संघर्ष के इस बुनियादी सांस्कृतिक मोर्चे की कदापि उपेक्षा नहीं की जा सकती।"

राहुल फाउण्डेशन और जनचेतना का यह सांस्कृतिक अभियान देशी- विदेशी पूंजी की गुलामी से देश की मेहनतकश जनता के मुक्तिसंघर्ष के वैचारिक-सांस्कृतिक मोर्चे से जुड़ा एक अहम अभियान था। गौरतलब है कि भूमण्डलीकरण के इस आततायी दौर में जो पुनरुत्थानवादी ताकतें कथनी में राष्ट्रीय गौरव की दुहाई देते हुए करनी में साम्राज्यवादियों के आगे घुटने टेक रही हैं, वही ताकतें पाठ्यक्रमों से प्रेमचंद और निराला को बाहर कर रही हैं। हिन्दी सहित सभी भारतीय भाषाओं की यह दुर्दशा साहित्य एवं संस्कृति की दुर्दशा में भी अहम भूमिका निभा रही हैं। ऐसे में मुक्ति संघर्ष के इस अहम सांस्कृतिक मोर्चे को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

अपनी भाषा में पढ़ो-पढ़ाओ! गुलामी का गंदा दाग मिटाओ!!
अपनी भाषा का साहित्य पढ़ो! आगे बढ़ो! आगे बढ़ो!!

असंगठित क्षेत्र के लिए सामाजिक सुरक्षा का झुनझुना

पिछले दिनों श्रम मंत्री ने असंगठित क्षेत्र के मजदूरों के लिए एक और घोषणा कर डाली। मंत्री का कहना था कि श्रम मंत्रालय दस करोड़ असंगठित क्षेत्र के मजदूरों को सामाजिक सुरक्षा के दायरे में लायेगा। मंत्री महोदय इससे पहले ऐसी कितनी ही घोषणाएं कर चुके हैं, यह खुद मंत्री महोदय को भी याद नहीं होगा। बरसाती मेढक की टर्र-टर्र जैसा ही एक राग बन चुका है—असंगठित क्षेत्र।

असंगठित क्षेत्र शब्द से यह बू आती है कि जहां संगठन बन ही नहीं सकता। हुक्मरान यही चाहते हैं कि मजदूर संगठित न हों। उनकी सामूहिक ताकत को खण्ड-खण्ड में बांट दिया जाये। "असंगठित" शब्द को पूंजीवादी सत्ता, पूंजी के गुलाम कलमघसीटों, प्रबंधकों द्वारा सुनियोजित तौर पर उछाला जा रहा है। एक तरफ हर क्षेत्र में दिन-प्रतिदिन ठेकेदारी प्रथा को प्रवेश कराया जा रहा है, दूसरी तरफ उजड़े हुए मजदूरों को सामाजिक सुरक्षा का झुनझुना थमाकर भरमाया जा रहा है।

दरअसल, पूंजीपतियों की मैनेजिंग कमेटी के रूप में खुल्लमखुल्ला काम कर रही सरकार जानती है कि उसके लाख षड्यंत्रों के बावजूद विशालकाय असंगठित क्षेत्र का मजदूर वर्ग पूंजीवादी व्यवस्था की कब्र खोदने वाला साबित हो सकता है। खुद सरकारी अनुमान के अनुसार देश में करीब सैंतीस करोड़ मजदूर असंगठित क्षेत्र में हैं। खुद मजदूरों और उनके नेताओं को भी इस ताकत का उतना अंदाजा नहीं होगा, जितना कि पूंजीवादी सत्ता को। लेकिन शासक वर्ग की लाख कोशिशों और चाहत के बावजूद उसके दुश्मन के पैदा होने और संगठित होने की जमीन लगातार उपजाऊ होती जा रही है।

श्रम मंत्री या सरकार की असंगठित क्षेत्र के प्रति दिखाई जा रही दरियादिली की असलियत यही है कि वे जानते हैं कि भविष्य में यह क्षेत्र उनकी जनविरोधी नीतियों को चुनौती देने वाली ताकत बनकर सामने आयेगा। इसीलिए, अभी से तैयारियां चल रही हैं। असंगठित क्षेत्र के मजदूरों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने की जुमलेबाजी हो रही है। हालांकि, सरकार मजदूरों को उतना ही दे सकती है, जिस पर पूंजीपतियों की सहमति बने, जितने पर उनके मुनाफे की रफ्तार कम न हो जाये। और हालात ये हैं कि मंदी के दलदल में धंसा पूंजीवाद मजदूरों का अधिक से अधिक खून निचोड़कर ही जिन्दा है। इसलिए जब मजदूरों के बच्चों के मुंह का निवाला तक छीनकर तिजोरियां भरी जा रही हों, तो सामाजिक सुरक्षा की बातें एक भ्रमजाल नहीं तो और क्या हैं।

अंग्रेजी राज से आजादी के छप्पन साल बाद आज भी न्यूनतम मजदूरी तक नहीं मिल पा रही है। कारखानों में मौजूदा श्रम कानूनों की धज्जियां उड़ाकर मजदूरों का शोषण किया जाता है। खेतों में काम कर रहे मजदूर आज भी बंधुआ मजदूरों जैसी स्थितियों में जी रहे हैं। ऐसे में असंगठित क्षेत्र मे मजदूरों के लिए सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने को आतुर दिख रही सरकार की असली मंशा को समझना मुश्किल नहीं है। ●

सरकारी योजना का लाभ चन्द खुशहाल मोचियों को
गरीब मोचियों की बढ़ती बदहाली

बिगुल संवाददाता

नोएडा। प्रदेश की पूर्व मायावती सरकार ने फुटपाथ पर दुकान चलाने वाले मोचियों के उत्थान के लिए कर्ज मुहैया कराने की घोषणा की थी। लेकिन कर्ज लेने के लिए जिस प्रकार की कागजी खानापूरी जरूरी है उसके चलते यह लाभ भी सिर्फ इक्का-दुक्का खुशहाल मोची ही मुश्किल से उठा पा रहे हैं।

सरकार ने घोषणा की थी कि फुटपाथ पर दुकान चलाने वाले मोचियों को 5,000 रु. से लेकर 50,000 रु. तक कर्ज दिया जायेगा। लेकिन शर्त यह है कि 10,000 रु. कर्ज लेने के लिए भी राशनकार्ड और जाति प्रमाणपत्र के साथ ही 50,000 रु. का गारंटर जरूरी है।

सेक्टर-9 की झुग्गी-बस्ती में रहने वाले शंकर दास ने बताया कि जाति प्रमाणपत्र बनाने में ही 1200 रु. गल जाते हैं। ऊपर से 8-10 दिन का काम छोड़कर तहसील का चक्कर। राशनकार्ड भी 500रु. दिये बिना नहीं बनता।

कर्ज लेने के लिए यह तामझाम और खर्च रोज कुआं खोदकर पानी पीने वाले गरीब मोची कैसे उठा पायेंगे। नतीजतन, इस योजना का लाभ चंद खुशहाल मोची ही उठा पा रहे हैं।

नोएडा में इस समय हजारों गरीब मोची हैं, जो ज्यादातर बिहार और पूर्वी उ.प्र. से आये हैं। ये ज्यादातर असंगठित हैं पर इनके बीच के कुछ जागरूक लोगों ने मिलकर दलित महासभा बनाकर संगठित होना शुरू किया है। अभी इस सभा के 350 सदस्य ही बन सके हैं। लेकिन अपने अधिकारों के बारे में जानकारी की कमी और अशिक्षा के चलते यह संगठन भी मोचियों के आर्थिक-सामाजिक उत्थान के लिए कोई कारगर कदम फिलहाल नहीं उठा पा रहा है।

वैसे यह हालत केवल नोएडा ही नहीं, बल्कि पूरे देश के गरीब मोचियों की है। दुकान और रहने का कोई पक्का ठिकाना न होने से अधिकतर मोची फुटपाथों या गैर-कानूनी झुग्गी-बस्तियों में गुजर-बसर कर रहे हैं। नतीजा यह कि अक्सर ही प्राधिकरण के बुलडोजर का शिकार होना पड़ता है, जिसमें उनके छोटे-मोटे औजारों और सामानों को भी जब्त कर लिया जाता है।

इस बदहाली से मुक्ति का रास्ता तो एकजुट संघर्ष से ही होकर जाता है। लेकिन मुश्किल यह है कि अन्य मेहनतकश दलितों की तरह ही गरीब मोची भी अपनी जाति के खाते-पीते नेताओं के चंगुल में फंसे हुए हैं, जो जातिगत भावनाओं को उभाड़कर और तरह-तरह से भरमाकर इन्हें सही राह पकड़ने से रोकते रहते हैं। अगर क्रान्तिकारी ताकतें इनके बीच प्रचार-प्रसार और संगठन का काम हाथ में लें, तो ये इस सच्चाई को स्वीकार करने को बाध्य होंगे कि गरीब मोचियों को भी बदहाली और जिल्लत से मुक्ति तभी मिलेगी जब सभी मेहनतकश एकजुट होकर क्रान्तिकारी बदलाव के रास्ते पर चलें। ●

इराक : अमेरिकी साम्राज्यवाद के ताबूत में एक और कील

अपने तमाम दावों के बावजूद अमेरिकी और ब्रिटिश साम्राज्यवादियों को यह गलतफहमी तो नहीं ही रही होगी कि इराकी जनता उनके हमलावर सैनिकों का फूलमालाओं से स्वागत करेगी। लेकिन जन प्रतिरोध इतना प्रचण्ड होगा इसका भी उन्हें शायद गुमान नहीं रहा होगा।

एक मई को अमेरिकी राष्ट्रपति जार्ज डब्ल्यू. बुश ने बड़ी शान से ऐलान किया था कि इराक पर युद्ध खत्म हो गया है। उस घोषणा को पांच महीने पूरे हो रहे हैं, लेकिन आज भी कोई दिन नहीं जाता जब इराक में कहीं न कहीं हमलावर सेनाओं पर जानलेवा हमले न होते हों। जबर्दस्त हवाई बमबारी और भयानक हथियारों के बल पर जीत हासिल करने वाली साम्राज्यवादी सेनाओं को लड़ाई में ज्यादा नुकसान नहीं उठाना पड़ा था और उस दौरान उनके सिर्फ 150 सैनिक ही मारे गये थे। लेकिन उसके बाद से लगातार हो रहे छापामार हमलों में 250 से ज्यादा अमेरिकी और ब्रिटिश सैनिक मर चुके हैं और कम से कम 500 बुरी तरह जख्मी हुए हैं।

वर्ष 1917 में ब्रिटेन ने हमला करके इराक को हड़प लिया था। इराकी जनता ने ब्रिटिश कब्जे के तीन वर्ष बाद 1920 में जबर्दस्त बगावत की थी। चार महीने तक चले प्रतिरोध संघर्ष में 10,000 इराकी और सैकड़ों ब्रिटिश मारे गये थे। इस विद्रोह ने एक लम्बे प्रतिरोध संघर्ष को जन्म दिया, जिसने अंततः ब्रिटिश उपनिवेशवादियों को इराक छोड़ने पर मजबूर कर दिया। लेकिन इस बार इराकी जनता ने तीन दिन भी इंतजार नहीं किया है। वैसे तो युद्ध के दौरान भी सद्दाम हुसैन के सैनिकों के अलावा जगह-जगह आम लोग गठबंधन फौजों पर छिटपुट हमले कर रहे थे, लेकिन सद्दाम की सत्ता ढहने और अमेरिकी-ब्रिटिश कब्जे के बाद एक व्यापक और संगठित जन-प्रतिरोध के उभरने के संकेत साफ तौर पर मिलने लगे हैं।

सद्दाम के पतन का सोग मनाने वाले आम इराकियों की तादाद ज्यादा नहीं है, लेकिन विदेशी कब्जे के खिलाफ लोगों में नफरत बढ़ रही है। विजेताओं की हेकड़ी से भरे, स्थानीय संस्कृति के प्रति असंवेदनशील भयंकर तनाव में जी रहे अमेरिकी सैनिक अपनी हरकतों से नफरत की इस आग में घी डाल रहे हैं।

पूरे इराक पर कब्जे के पांच महीने बाद भी जब वहां "महाविनाश के हथियार" के नाम पर कुछ नहीं मिला और न ही अलकायदा से संबंध का कोई सबूत सामने आया, तो बुश और ब्लेयर की जोड़ी ने बड़ी बेशर्मी से अब यह राग अलापना शुरू कर दिया है कि इराक पर हमला तो वहां "लोकतंत्र और स्वतंत्रता" की बहाली के लिए किया गया था। लेकिन अमेरिकी रहनुमाई में इराक के "गौरवशाली भविष्य" के दावे हवा हो चुके हैं। महीनों बाद भी बगदाद में अपराध और लूटपाट बेलगाम जारी है और पानी-बिजली तक की सप्लाई दुरुस्त नहीं हो पाई है। युद्ध के पहले कमरतोड़ आर्थिक प्रतिबंधों के बावजूद इराकी नागरिक जो बुनियादी सुविधाएं पा रहे थे वे भी छिन गई हैं। सिर्फ तेल की सप्लाई बहाल करने में चुस्ती दिखाई जा रही है।

इराक का तेल उद्योग लगभग पूरी तरह केलाग ब्राउन एंड रूट कंपनी के नियंत्रण में आ चुका है। यह अमेरिकी उपराष्ट्रपति डिक चेनी की कंपनी हैलीबर्टन की मातहत कंपनी है। बुश की करीबी शेवरॉन टेक्साको सहित छह फर्मों को तेल निकालने के ठेके दिये जा चुके हैं। लेकिन इराकी जनता अपनी राष्ट्रीय संपदा को इतनी आसानी से लुटेरों के हवाले नहीं होने देगी। सीरिया के बनियास बंदरगाह तक जाने वाली पाइपलाइन में जिस दिन पहली बार तेल छोड़ा गया उसी दिन उसे विस्फोट से उड़ा दिया गया। जनता के जबर्दस्त प्रतिरोध का ही नतीजा है कि अरबों डालर फूंककर अमेरिकी अभी तक इराकी तेल की लूट शुरू नहीं कर पाये हैं।

अमेरिकी हमलावरों को इराक में दो स्तरों पर विकट विरोध का सामना करना पड़ रहा है। पहला, पूरे देश में बिखरे हुए छापामार संघर्ष के रूप में और दूसरा, फिलिस्तीनी इंतिफादा जैसे व्यापक जन-प्रतिरोध के रूप में। एक ओर इराक के सभी प्रमुख शहरों में बड़े-बड़े प्रदर्शन हो रहे हैं, तो दूसरी ओर छापामार हमले तेज होते जा रहे हैं। सप्लाई लाइनों पर हमलों से अमेरिकी सैनिक त्रस्त हैं और अब तो सेना की चौकियों पर धावा बोलकर सैनिकों को उठा ले जाने जैसी घटनायें भी होने लगी हैं।

गठबंधन सेनाओं की चिंता इस बात से और बढ़ गई है कि दो दशकों से सद्दाम की सेना से लड़ रहे शिया छापामार अब अमेरिकी और ब्रिटिश फौजों के खिलाफ लड़ने की तैयारी कर रहे हैं।

अमेरिकी अधिकारी अब भी यह कह रहे हैं कि छिटपुट हमले केवल इसलिए जारी हैं कि सद्दाम हुसैन उनकी पकड़ में नहीं आये हैं और अपने समर्थकों को उकसा रहे हैं। लेकिन इस बात के स्पष्ट संकेत हैं कि प्रतिरोध संघर्ष की जड़ें ज्यादा गहरी हैं। शुरू में सिर्फ छिटपुट हमले ही हो रहे थे लेकिन फिर इस बात के प्रमाण मिलने लगे कि प्रतिरोध की कार्रवाइयों को कोई भूमिगत ताना-बाना संगठित कर रहा है। गठबंधन सैनिकों के मुताबिक ब्रिटिश-अमेरिकी फौजी काफिलों की रवानगी और उनके रास्तों के बारे में कारों के हार्न बजाकर या रंगीन रोशनी वाले राकेट हवा में छोड़कर छापामारों के दस्तों को सूचनाएं दी जाती हैं। विरोध की कार्रवाइयों को समन्वित करने के और भी साक्ष्य मिले हैं।

चारों ओर से शत्रुतापूर्ण आबादी से घिरे, महीनों से घर से दूर और छापामार हमलों के साये में जी रहे अमेरिकी सैनिक बुरी तरह संत्रस्त हैं। तभी तो कभी वे छत पर चढ़कर खेल रहे बारह साल के बच्चे को मशीनगन से लैस हमलावर समझकर गोली मार देते हैं तो कभी उनका साथ दे रहे इराकी पुलिस के जवानों को ही भून डालते हैं। हालत यह है कि भीड़ भरे बाजार में से एक अधेड़ व्यक्ति निकलता है और सैनिकों पर पिस्तौल से गोली चलाकर भीड़ में गुम हो जाता है। गश्त लगा रहे सैनिकों पर कोई औरत गंदा पानी फेंक देती है तो कोई बच्चा पत्थर मारकर भाग जाता है।

उधर वाशिंगटन में बैठे मर्दानगी दिखाने पर आमादा जार्ज डब्ल्यू. बुश ने हेकड़ी दिखाते हुए कहा, "इराक में जो लोग अमेरिकी सैनिकों को नुकसान पहुंचाना चाहते हैं, उनको मेरा जवाब है, आ जाओ मैदान में!" इसके अगले ही दिन अमेरिकी सैनिकों पर ताबड़तोड़ कई हमले हुए।

कुछ अरबी अखबारों में ऐसी खबरें छपी हैं कि अमेरिकी सैनिकों ने रावा शहर में नागरिकों की भीड़ पर अंधाधुंध गोलियां चलाकर सौ लोगों को मार डाला। इनकी पुष्टि नहीं हो सकी है लेकिन राबर्ट फिस्क और पैट्रिक कॉकबर्न जैसे विश्वसनीय पत्रकारों की रिपोर्टों के मुताबिक असहनीय गर्मी, ऊब और थकान से परेशान और लम्बे समय बाद बीहड़ जीवनस्थितियों में रहने को मजबूर अमेरिकी सैनिकों की हालत यह है कि वे बात-बात पर गोली चलाने को तैयार रहते हैं। खासकर, हमले में सबसे आगे रहने वाली थर्ड इनफैंट्री डिवीजन के सैनिक अपने कमांडरों से बुरी तरह खफा हैं। हमला खत्म होते ही उन्हें वापस भेजने का वादा किया गया था, पर अब तो लगता है उन्हें काफी अरसा यहीं गुजारना पड़ेगा। आश्चर्य नहीं कि अपने अफसरों का गुस्सा वे अपने सामने पड़ जाने वाले बेकसूर नागरिकों पर उतारते हों। उधर अमेरिका में सैनिकों की पत्नियों ने फौजी अफसरों और बुश प्रशासन के खिलाफ मुहिम छेड़ रखी है।

अमेरिकी अघोषित सेंसर के कारण ऐसी बहुतेरी घटनाओं की जानकारी बाहरी दुनिया को मुश्किल से ही हो पाती है।

यह भूलना नहीं चाहिए कि सद्दाम हुसैन की सत्ता जनता की सत्ता नहीं बल्कि एक निरंकुश पूंजीवादी सत्ता थी। सद्दाम लम्बे समय तक अमेरिका के ही मोहरे थे, पर जब उनकी क्षेत्रीय महत्वाकांक्षाएं अपने आकाओं के हितों के प्रतिकूल हो गईं तो अमेरिका को इराकी तेल पर कब्जे और अरब धरती पर सीधे हस्तक्षेप के लिए एक बहाना मिल गया। अमेरिकी गुंडागर्दी ने उन्हें कुछ समय के लिए जनता का नायक बना दिया था। अमेरिका के हाथों उनकी संगठित सेना की हार तो होनी ही थी लेकिन इराक की जनता की हार असंभव है। लाख कोशिशों के बाद जैसे अमेरिका अपने पिछवाड़े—लातिनी अमेरिका की जनता के प्रतिरोध संघर्षों को दबा नहीं पाया है, जैसे उसे कोरिया, वियतनाम और कंपूचिया से भागना पड़ा था, उसी तरह इराक में भी व्यापक जन-प्रतिरोध के आगे उसे हारना ही होगा। विजय इराकी जनता की ही होगी! इराक पर हमला अमेरिकी साम्राज्यवाद के ताबूत में एक और कील साबित होगा!

● सत्यम

जनदबाव में नैनीताल उच्च न्यायालय ने अपना फैसला वापस लिया

न्याय के लिए नैनीताल में प्रदर्शन

नैनीताल (कुमाऊं रिपोर्टर)। भारी जनदबाव के कारण नैनीताल उच्च न्यायालय ने, मुजफ्फरनगर काण्ड के अपराधी डी.एम. अनन्त कुमार सिंह व अन्य की बहाली का अपना 22 जुलाई, 2003 का आदेश वापस लेते हुए फिर से सुनवाई के लिए दूसरी पीठ को अधिकृत कर दिया है।

उल्लेखनीय है कि नैनीताल उच्च न्यायालय की एक खण्डपीठ ने बड़े ही षड्यंत्रकारी तरीके से, 1994 में उत्तराखण्ड राज्य की मांग को लेकर दिल्ली प्रदर्शन करने जा रहे आन्दोलनकारियों का दमन और महिलाओं की अस्मिता को अपमानित करने वाले तत्कालीन जिलाधिकारी अनन्तकुमार को बरी कर दिया था।

इस फैसले के बाद पूरे राज्य में जबर्दस्त आक्रोश फूट पड़ा। 5 अगस्त को उत्तराखण्ड के सफल बन्द, धरना प्रदर्शन और 1 सितम्बर को उच्च न्यायालय घेरने और फैसले की प्रति जलाने के आह्वान से घबराई प्रदेश की कांग्रेसी सरकार ने पुनर्विचार याचिका दायर कर दी और बरी करने वाली खण्डपीठ ने ही अपना फैसला वापस ले लिया।

फैसला वापस लिये जाने के बावजूद 'उत्तराखण्ड संयुक्त संघर्ष मोर्चा' के आह्वान पर विभिन्न संगठनों ने 1 सितम्बर को नैनीताल में जबर्दस्त प्रदर्शन किया और पुलिस की भारी बाड़ेबंदी को तोड़कर रैली निकाली। तल्लीताल में आयोजित सभा में वक्ताओं ने अनन्त कुमार के खिलाफ पैरोकारी में ढिलाई बरतने वाले सीबीआई के वकील और राज्य के अपर महाधिवक्ता यू.के. उनियाल, राज्य सरकार व न्यायिक भ्रष्टाचार की जमकर आलोचना की तथा खण्डपीठ के दोनों न्यायाधीशों सहित मामले में लिप्त न्यायिक अधिकारियों की बर्खास्तगी तथा अपराधी डी.एम. अनन्त कुमार, डी.आई.जी. बूआ सिंह व अन्य अभियुक्तों को फांसी देने की मांग की।

'उत्तराखंड संयुक्त संघर्ष मोर्चा' ने इस न्यायिक भ्रष्टाचार के खिलाफ व राज्य की राजधानी गैरसैण की मांग को लेकर 2 अक्टूबर (मुजफ्फरनगर काण्ड दिवस) को प्रदेश बंद तथा 9 नवम्बर (राज्य स्थापना दिवस) को देहरादून मार्च का आह्वान किया है।

यह सच है कि जनदबाव के कारण ही 1996 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने जलियांवाला काण्ड की याद दिलाने वाले इस काण्ड में शामिल अधिकारियों को दोषी करार दिया था। लेकिन जैसे-जैसे आंदोलन पीछे हटता गया, मामला ठंडा पड़ गया और उच्चतम न्यायालय ने न केवल इस फैसले को पलट दिया, वरन तत्कालीन भाजपाई मुख्यमंत्री राजनाथ सिंह ने इस पर मुकदमा चलाने की इजाजत भी नहीं दी थी। इसलिए आंदोलन की निरंतरता ही मामले को अंजाम तक पहुंचा सकती है।

मुजफ्फरनगर काण्ड के अपराधियों को बरी करने का मामला

वैसे भी इस पूंजीवादी व्यवस्था में न्याय महज ढकोसला है। हर न्यायपूर्ण संघर्ष को कुचलने में यहां की पुलिस पूरी तरह चाक-चौबंद है। इस मुद्दे पर सारी पार्टियां एकमत हैं। इस घटना में ही देखें तो सपा-बसपा की तत्कालीन गठबंधन सरकार ने दमन का पाटा चलाया और भाजपा व कांग्रेसी सरकारों ने अपराधियों को बचाने का काम किया। न्यायपालिकाएं हड़ताल के मौलिक अधिकार को छीनने, पूंजीपतियों को बंदी व छंटनी की खुली छूट देने का काम कर रही हैं तो दमनकारियों को बचाने का काम भी उतनी ही मुस्तैदी से कर रही हैं।

बहरहाल, अनन्तकुमार प्रकरण ने उत्तराखंड की जनता के संघर्ष को फिर से तेज कर दिया है। जरूरत है संघर्ष की निरंतरता को जारी रखने की।

फोकट का गंगाजल, लबालब मुनाफा

आज देश में चौतरफा पीने के पानी का संकट छाया हुआ है। पानी नहीं मिल पाने के कारण जिन्दगियां दांव पर लग रही हैं। पहाड़ों पर तो लोग मीलों का सफर तय करके पानी का जुगाड़ कर पाते हैं। ऐसे में पानी का सौदा बेहद मुनाफे का साबित होने जा रहा है। भला मुनाफाखोर कब पीछे रहने वाले। लोग मरें या जिएं, उन्हें तो बस मुनाफे से मतलब है। इसका एक ताजा उदाहरण है, गंगा के पानी को फ्रांस की कम्पनी को बेचा जाना।

डेग्रोमॉट विश्व में पानी का व्यापार करने वाली सबसे बड़ी कम्पनी स्वेज का एक हिस्सा है। इसने पांच महाद्वीपों के 130 देशों से पानी के निजीकरण के 20 बड़े अनुबंधों को हासिल किया है। यह भारत सरकार के धन से ही अपना व्यापार शुरू करने जा रही है। यह कंपनी 200 करोड़ का वाटर ट्रीटमेंट प्लांट मुफ्त में मिले जल से 10 साल तक चलायेगी।

नवधान्य रिसर्च फाउण्डेशन फार साइंस, टेक्नोलॉजी एंड इकोलॉजी' दिल्ली के मुताबिक स्वेज डेग्रोमॉट की करीब 3500 करोड़ डालर की वार्षिक आय में से 850 करोड़ डालर से अधिक आय पानी के व्यापार से ही है। दिल्ली सरकार ने स्वेज की सहयोगी कम्पनी को जलशोधन का जो ठेका दिया है उसमें टिहरी बांध से गंगा का पानी अपर गंगा नहर से मुरादनगर तक लाया जायेगा। यहां से यह पानी खेतों में न बहकर 30 किमी लम्बी 3.25 मीटर गोलाई की पाइप लाइन से सोनिया विहार, दिल्ली पहुंचेगा। यह सारा खर्च दिल्ली सरकार उठायेगी। पानी के एवज में कोई राजस्व भी नहीं वसूला जायेगा। और यह कम्पनी 6350 लाख लीटर ट्रीटेड पानी दिल्ली के लोगों को बेचेगी। एक तरह से गंगा का पानी किसानों व गंगा प्रदेश के लोगों के हिस्से से छीनकर अरबों का मुनाफा कमाने वाली कम्पनी को मुफ्त में मिलेगा।

स्वेज सहित अन्य बहुराष्ट्रीय कम्पनियां भारत में पानी को एक बहुत बड़े बाजार के रूप में देख रही हैं। इनके व्यापार को पसारने में लुटेरों की संस्थाएं विश्व बैंक व आई.एम.एफ. भरपूर मदद कर रही हैं। कोल्ड ड्रिंक से अकूत मुनाफा बटोर कर पेप्सी-कोक जैसी कम्पनियां बोतलबन्द पानी लेकर बाजार में उतर चुकी हैं। पेय पदार्थों से लेकर खाद्य पदार्थों तक में जहर बेचने वाली ये कम्पनियां बेरोकटोक अपना कारोबार कर रही हैं।

दुनिया भर में अमन-चैन और स्वास्थ्य सुरक्षा का ढोल पीटने वाले साम्राज्यवादी देशों की घिनौनी हरकतों को इसी से जाना जा सकता है कि जो रसायन इन देशों में प्रतिबंधित हैं उन्हीं का प्रयोग कर तैयार माल भारत जैसे देशों में भेजा जा रहा है। इन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने अपने मुनाफे के लिए गरीब देशों को अपना घटिया माल खपाने का कचराघर बना रखा है।

मिसाल के तौर पर एक अमेरिकी के प्रति एक किग्रा. भोजन में मात्र साढ़े छह मि.ग्रा. डीडीटी एवं 1.1 ग्रा. एचसीएच का अंश पाया जाता है जबकि एक आम भारतीय के भोजन में 238.1 मि.ग्रा. डीडीटी एवं 124.4 मि.ग्रा. एचसीएच का अंश मौजूद होता है। इन कीटनाशकों से होने वाली धीमी मौतों का सिलसिला जारी है। इनके रिकार्ड में इस तथ्य की कहीं इंदराजी नहीं है कि कितनों की जिंदगी घातक बीमारियों से तबाह हो रही है, कितने घर तबाह हो रहे हैं। वे हर कीमत पर अपना बाजार बनाये रखना चाहते हैं और पीढ़ियों को अपाहिज, रुग्ण बनाकर अपना मुनाफा पीट रहे हैं।

● आशीष

झुग्गी-बस्ती को उजाड़ने वाले दिल्ली हाईकोर्ट के आदेश का विरोध करो!

राज्यसत्ता देश की राजधानी दिल्ली को पूरी तरह से "धनपतियों का स्वर्ग" बना देने पर आमादा है। कभी पर्यावरण के नाम पर तो कभी अवैध निर्माण तोड़ने के नाम पर गरीबों-मेहनतकशों को लगातार उजाड़कर राजधानी के बाहर धकेला जा रहा है। यह है पूंजीवादी जनतंत्र का असली चेहरा जिसमें काम करनेवालों को उजाड़ दिया जाता है ताकि मुफ्तखोरों की अट्टालिकाओं के लिए जगह बनाई जा सके। इसमें न्यायपालिका आज प्रशासन से भी दो कदम आगे की भूमिका निभा रही है। आखिरकार न्याय करने वाले भी तो इसी व्यवस्था के चाकर हैं और अभिजात सफेदपोशों के ही भाईबन्द हैं। न्यायालयों के फैसले लगातार सिद्ध कर रहे हैं कि संविधान, कानून, कोर्ट-कचहरी–सभी थैलीशाहों की जेब में हैं।

दिल्ली जनवादी अधिकार मंच राजधानी के बुद्धिजीवियों और लोक अधिकार कर्मियों का एक ऐसा संगठन है जो आम मेहनतकश जनता के पक्ष में लगातार आवाज बुलन्द करता रहा है और राजधानी से उनके दरबदर किये जाने की कार्रवाइयों का विरोध करता रहा है। दिल्ली की झुग्गी-बस्तियों को उजाड़ने के हाईकोर्ट के फैसले के विरुद्ध मंच द्वारा जारी किये गये पर्चे को हम यहां पूरा का पूरा प्रकाशित कर रहे हैं। –सम्पादक

नवम्बर 2002 में दिल्ली हाईकोर्ट ने दो फैसले सुनाये। इन फैसलों में कहा गया है कि पुनर्वास बस्तियों में बसाये गये लोगों में से जो 1990 के बाद दिल्ली में आये हैं उन्हें उजाड़ दिया जायेगा। दूसरा, 1997 के बाद बनी झुग्गियों को तत्काल तोड़ दिया जायेगा। तीसरा, किसी भी झुग्गीवासी को झुग्गी तोड़े जाने पर दूसरी जगह नहीं दी जायेगी। हाईकोर्ट का मानना है कि पुनर्वास की नीति ही गैर कानूनी है। इन आदेशों ने झुग्गियों एवं पुनर्वास बस्तियों में अमानवीय परिस्थितियों में रहने वाले लाखों मेहनतकश लोगों की जिंदगी को दहला दिया है।

दिल्ली शहर में हम मेहनतकशों की स्थिति

दिल्ली में हर साल करीब 1 लाख 50 हजार लोग आते हैं। इनमें से कुछ रोजगार के अभाव में मजबूरी वश आते हैं और कुछ को काम की जरूरत के हिसाब से लाया जाता है। फिर इन्हें इनके अपने ही रहमोकरम पर छोड़ दिया जाता है। आज दिल्ली की आबादी 1 करोड़ 40 लाख से ज्यादा है। इनमें से लगभग 30 लाख लोग 1073 अनधिकृत कालोनियों में रहते हैं। करीब 35 लाख लोग 1100 से ज्यादा बस्तियों में फैली छह लाख झुग्गियों में बसते हैं। 20 लाख लोग पुनर्वास कालोनियों में रहते हैं। कुल मिलाकर 49,000 हेक्टेयर वाले शहरी क्षेत्र की मात्र 1.5 प्रतिशत जमीन पर ही दिल्ली की आबादी का 70 प्रतिशत से ज्यादा हिस्सा रहता है जहां पानी, नालियां, शौचालय, स्वास्थ्य सुविधाएं व स्कूल जैसी बुनियादी जरूरतें भी पर्याप्त नहीं हैं। उस पर भी सरकार की विदेश परस्त नीतियों का शिकार होकर उजड़ते रहने का कष्ट ढोते रहते हैं।

उजड़ने का सिलसिला बदस्तूर जारी है

1975 के आपातकाल से ही लाखों मेहनतकशों को जमीन व अन्य मूलभूत सुविधाओं से बेदखल करने का सिलसिला जारी है। 1990 के बाद की नई आर्थिक नीतियों के चलते इस बेदखली को कारगर रूप दिया गया। प्रदूषण के नाम पर बड़ी संख्या में फैक्टरियों को बंद किया गया और लाखों मेहनतकशों को बाहर खदेड़ दिया गया। झुग्गी-बस्तियां उजाड़ने के इस दौर में हजारों लोगों को भलस्वा, मदनपुर-खादर, पपनकलां, मोलारबंद जैसे बंजर और दलदली इलाकों में भेज दिया गया। वहां भी उनसे मोटी रकम लेकर मात्र 5-10 साल तक रहने का लाइसेंस दिया गया। ऐसे इलाकों में लोगों ने 15 हजार रुपये से भी ज्यादा खर्च, जमीन को समतल करने एवं नींव बनाने में किया। कर्ज लेकर और पेट की रोटी काटकर किये गये इस खर्च के बाद वह जगह रहने लायक बनी। इसके बावजूद भी लोगों को जमीन का मालिकाना हक नहीं दिया गया। हर वक्त यह खतरा बना रहता है कि न जाने कब यहां से उजाड़ दिया जायेगा। जिसके कारण दिमागी शांति और सुरक्षा का अहसास एकदम खत्म हो गया है। दिल्ली हाईकोर्ट के आदेश के बाद सर्वे का नया दौर शुरू हुआ है। यह सर्वे ऐसा पहला सर्वे है जो लोगों का पुनर्वास करने के लिए नहीं बल्कि उन्हें उजाड़ देने के लिए है। सर्वे के संबंध में एम.सी.डी. के डायरेक्टर से बात करने पर वह बेशर्मी की तरह कहता है कि तुम्हें जमीन किराये पर दी गई है, इसलिए किरायेदार की हैसियत से बात करो। दूर-दराज के इलाकों में धकेल दिये जाने के कारण लोग अपनी आजीविका के साधनों से भी बिछुड़ गये हैं, जिससे उनके काम के अवसर बुरी तरह से प्रभावित हुए हैं। जो पहले थोड़ा-बहुत वे कमाते थे, आज उतना कमाना भी मुश्किल हो रहा है। ऐसे कई इलाकों में दो सालों के बाद भी बिजली, पानी, परिवहन, स्वास्थ्य केन्द्र व स्कूल जैसी बुनियादी सुविधायें भी नहीं हैं। असल में कहा जाये तो यह शहर उन मेहनतकशों के विषय में जरा भी चिंतित नहीं है जिनकी मेहनत से यह शहर चल रहा है।

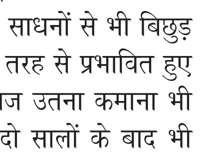

सरकार और कोर्ट की चक्की में पिसते लोग

इससे पहले दिल्ली सरकार ने यह आश्वासन दिया था कि 1998 से पहले बसे सभी झुग्गीवासियों को दूसरी जगह दी जायेगी। लेकिन कोर्ट ने 29 नवम्बर 2002 के फैसले में इसे जनवरी 1990 कर दिया। इस फैसले के द्वारा जान-बूझकर मेहनतकशों में फूट डालने की कोशिश की गई है ताकि लोग 1990 के पहले और 1990 के बाद के खेमों में बंट जायें और मिलकर विरोध न कर सकें। जबकि सच्चाई यह है कि केवल 1990 के बाद के लोगों को ही नहीं हटाया जायेगा बल्कि पुनर्वास की नीति को खारिज कर कोर्ट ने यह साफ-साफ कह दिया है कि 1990 के पहले की झुग्गियों को हटाने के बाद भी दूसरी जगह में रहने की कोई व्यवस्था नहीं की जायेगी।

दिल्ली के असली हकदारो! अपनी दिल्ली छीन लो यारो!

दिल्ली हाईकोर्ट का कहना है कि झुग्गीवासियों को फिर से बसाने का अर्थ है, जेबकतरों को इनाम देना। इससे यह साफ है कि न्यायधीशों की नजर में यह शहर केवल अमीरों व मध्यवर्ग के उन लोगों के लिए है जो मकान खरीद सकते हैं या किराया दे सकते हैं। मेहनतकश लोग इन रईसजादों के रहने के लिए मकान बनाते हैं। इसके बावजूद भी इन अमीरों का कहना है–"झुग्गी बस्तियों के कारण हम लोग सैर-सपाटे को नहीं जा सकते, अपनी बाल्कनियों में खड़े नहीं हो सकते क्योंकि बदबू का माहौल चारों तरफ बना रहता है।" इसी तर्क को आगे बढ़ाते हुए ये अपने जीने के अधिकार के हनन की दुहाई देते हुए अदालत का दरवाजा खटखटाते हैं। कोर्ट खुले रूप में अपने वर्ग रुझानों को ध्यान में रखते हुए कहता है कि फ्लैटों और कोठियों में रहने वाले इन लोगों के जीवन के अधिकार का सचमुच हनन हो रहा है। अतः सामाजिक न्याय के नाम पर झुग्गी बस्ती में रहने वाले लोगों के एवज में इन लोगों के जीने, स्वास्थ्य और सुरक्षा के अधिकार एवं कानून व्यवस्था का त्याग नहीं किया जा सकता। साथ ही साथ कोर्ट रेजीडेंट्स वेलफेयर एसोसियेशनों से आग्रह करता है कि वे अपने इलाके में झुग्गी बस्तियों को तुड़वाने के लिए प्रशासन को सूचित करें।

यह बहुत हास्यास्पद है कि कोर्ट द्वारा चंद लोगों के जीने के अधिकार का विशेष ध्यान रखा जा रहा है, जबकि, बहुसंख्यक आबादी के जीने के अधिकार को साफ-साफ नकारा जा रहा है। क्या जीने का अधिकार इस शहर की बहुसंख्यक आबादी के लिए नहीं है? इस अधिकार की तो बात छोड़िये। कोर्ट द्वारा इस आदेश के खिलाफ याचिका दायर करने को भी गैर कानूनी करार दिया गया है। इस आदेश के खिलाफ की गई कोई भी कार्यवाही कोर्ट की अवमानना साबित होगी। न्यायाधीशों को किसकी जिन्दगी के अधिकार की चिंता है और किसकी नहीं, यह साफ-साफ पता चलता है। अमीरों की खातिरदारी न्यायाधीश भी करते हैं और नेता लोग भी।

तमाम चुने गये नेता बार-बार यह तसल्ली देते हैं कि झुग्गियों को नहीं तोड़ा जायेगा। लेकिन वे उन्हें बचाने का कोई प्रयास नहीं करते। यह मात्र वोट हथियाने की राजनीति है। जबकि वे खुद उजाड़ने की इस योजना का हिस्सा होते हैं। दरअसल शासकवर्ग के पिछलग्गू ये तमाम राजनीतिक दल कोर्ट का सहारा लेकर अपने आप को बचाने की कोशिश करते हैं।

बेहतर जीवन से वंचित हम मेहनतकश

झुग्गी बस्ती में रहने वाला हरेक व्यक्ति जानता है कि इस शहर में उनकी जिन्दगी कितनी अन्यायपूर्ण तरीके से कट रही है। अगर आप ऐसी किसी भी बस्ती में रहते हैं तो आपको हर पल अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करना होगा। आपकी मेहनत से यह शहर जिंदा रहेगा, मगर आप बेहतर जीवन के लिए बुनियादी सुविधाओं से भी वंचित रहेंगे। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आप कितनी मेहनत करते हैं। इस किस्म की अमानवीय जिंदगी हमारे शहर की आधे से ज्यादा आबादी जी रही है। कौन ऐसे शहर में आता अगर गांव में ही रोजगार के अवसर एवं सम्मानपूर्वक जिन्दगी जीने की संभावनाएं होतीं? कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि झुग्गी बस्तियों में रहने का अर्थ है लगातार उजड़ना और जीने के अधिकार का लगातार कुचला जाना।

क्या सचमुच दिल्ली में गरीब मेहनतकशों के लिए जमीन नहीं है?

उस 13 हजार हेक्टेयर जमीन का क्या हुआ जो डी.डी.ए. ने घर बनाने के लिए अपने कब्जे में लिया था? उन तमाम आवास योजनाओं का क्या हुआ जो निम्न आय वर्ग तथा आर्थिक रूप से कमजोर तबकों के लिए बनायी गयी थी? क्यों मध्य तथ उच्च मध्यवर्ग के लिए आकर्षक आवास योजनाएं आ रही हैं, जबकि हम गरीबों को अपनी अस्मिता के साथ जीने की कोई जगह इस शहर में नहीं हैं?

उजाड़ने की इस मुहिम की असलियत क्या है?

असल में यह कदम शहर के पूरे आर्थिक ढांचे को बदलने का है, जिसके तहत उत्पादन की इकाइयों को खत्म करना है और समूचे शहर को ऊंचा राजस्व, ऊंचा मुनाफा और ऊंची आमदनी पैदा करने वाले सेवा-केन्द्र के रूप में खड़ा करना है। भूमाफिया इन उद्योगों एवं बस्तियों के हटने से खाली होने वली जमीन को भारी मुनाफे में बेचेगा। उसके बाद व्यावसायिक प्रतिष्ठान (विदेशी कम्पनियों के दफ्तर, होटल, क्लब, महंगे बाजार) बनाकर ढेर सारा मुनाफा कमाया जायेगा।

साजिशों के इस चक्रव्यूह में क्या करें?

हमें इन सभी साजिशों का मिल-जुलकर विरोध करना होगा और यह याद रखना होगा कि उजाड़ने की यह तलवार एक-एक कर हम सभी पर गिरेगी। इस साजिश के दायरे में हम और आप भी आते हैं। क्योंकि आप और हम मेहनतकश लोग हैं और यह पूरा प्रशासन मेहनतकशों को उजाड़ने की इस मुहिम में शामिल है। ऐसे में हमारे सामने विरोध और संघर्ष के अलावा और कोई चारा नहीं बचता। आइये! एकजुट होकर दिल्ली पर अपना हक छीन लें और –

- किये जा रहे तमाम सर्वे का विरोध करें।

- प्रशासन तथा न्यायपालिका के उन तमाम प्रयासों का विरोध करें, जिसके तहत शहर से झुग्गीवासियों को निकाला जा रहा है।

- राजसत्ता व शासकवर्ग के उन तमाम प्रयासों का विरोध करें, जिसके तहत शहर से झुग्गीवासियों को निकाला जा रहा है।

- शहर को उसके बहुसंख्यक नागरिकों की समस्याओं के प्रति जागरूक करें।

- तमाम पुनर्स्थापित झुग्गी-बस्तियों एवं अनधिकृत कालोनियों को एकजुट करें।

"नागरिक सरकार वस्तुतः निर्धनों के विरुद्ध धनिकों की रक्षा के लिए अथवा उनके विरुद्ध जिनके पास कुछ नहीं, उन लोगों की रक्षा के लिए संस्थापित होती है, जिनके पास सम्पत्ति है।"

–एडम स्मिथ

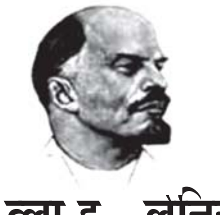

व्ला.इ. लेनिन

"राजनीति और संगठन के साथ 'शिक्षण शास्त्र' को गड्डमड्ड मत कीजिए!"

देश में नये सिरे से एक क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी के निर्माण एवं गठन में मजदूरों के एक राजनीतिक अखबार की भूमिका के बारे में 'बिगुल' के प्रतिनिधियों से अक्सर सवाल किये जाते हैं। सवाल उठाने वालों में कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठनों के कार्यकर्ताओं से लेकर वामपंथी बुद्धिजीवी और ट्रेड यूनियनों के नेता-कार्यकर्ता शामिल हैं। ये लोग देश के मजदूर वर्ग की पिछड़ी राजनीतिक चेतना का हवाला देकर 'बिगुल' जैसे किसी अखबार की उपयोगिता पर न केवल संदेह प्रकट करते हैं वरन इसे आम मजदूरों से दूरी पैदा करने वाला तक कह बैठते हैं। ऐसे लोगों को लेनिन की प्रसिद्ध रचना 'क्या करें?' का प्रस्तुत अंश ध्यानपूर्वक फिर से पढ़ने की जरूरत है। आज देश के मजदूर आंदोलन में अर्थवाद-ट्रेड यूनियनवाद की जो महामारी व्याप्त है उसका एक अहम कारण यह भी है कि आंदोलन के नेता और कार्यकर्ता अपने क्रान्तिकारी पुरखों के अनुभवों से सीखना, उनसे परामर्श लेना भूलकर स्वयं के अनुभव को ही सब कुछ मान बैठते हैं। अपने सीमित अनुभव और अधकचरी सैद्धान्तिक समझ की जमीन पर खड़े होकर अपने क्रान्तिकारी पुरखों के अनुभवों और इनसे निकले महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक निचोड़ों की बेकद्री करने की प्रवृत्ति से राह भटकने के सिवा और कोई नतीजा नहीं हासिल होगा। आज के समय में क्रान्तिकारी मार्क्सवाद की कालजयी रचनाओं को बार-बार पढ़ने की जरूरत है।

—सम्पादक

"...मैं मजदूरों के लिए सुबोध साहित्य की आवश्यकता से, और विशेष रूप से पिछड़े हुए मजदूरों के लिए विशेष प्रकार के सुबोध (पर निस्संदेह भोंडा नहीं) साहित्य की आवश्यकता से जरा भी इंकार नहीं करता। पर मुझे जो बात बुरी लगती है, वह यह है कि "शिक्षणशास्त्र" के प्रश्नों को सदा राजनीति और संगठन के प्रश्नों से उलझा दिया जाता है। आप महानुभाव, जो "औसत मजदूरों" के बारे में बहुत ही चिंता प्रकट करते हैं, मजदूर राजनीति या मजदूर संगठन की चर्चा करने से पहले **नीचे झुकने** की अपनी इच्छा द्वारा असल में मजदूरों का अपमान ही करते हैं। गंभीर बातों के बारे में सीधे ही खड़े होकर बातें कीजिए, और शिक्षाशास्त्र की बातें शिक्षाशास्त्रियों के लिए ही छोड़ दीजिए, राजनीतिज्ञों और संगठनकर्ताओं को उनमें न घसीटिये!

क्या बुद्धिजीवियों में भी उन्नत लोग, "औसत लोग" और "आम लोग" नहीं होते, क्या हर आदमी यह नहीं मानता कि बुद्धिजीवियों के लिए भी सुबोध साहित्य लिखा नहीं जाता? मान लीजिए कि किसी ने कालेज या हाई स्कूल के विद्यार्थियों को संगठित करने के बारे में एक लेख लिखा हो और उसमें बार-बार—इस अंदाज से कि मानो कोई नया आविष्कार किया गया हो—यह दुहराया गया हो कि सबसे पहले हमें "औसत विद्यार्थियों का" संगठन बनाना चाहिए। यदि कोई ऐसा लेख लिखेगा, तो उसका मजाक बनाया ही जायेगा और यह उचित भी होगा। उससे कहा जायेगा : महाशय, यदि आपके दिमाग में संगठन के बारे में कुछ विचार हों, तो बताइये, इसे हम खुद तय कर लेंगे कि कौन "औसत दर्जे" में आता है, कौन उसके ऊपर है और कौन औसत से नीचे है। लेकिन यदि आपके पास संगठन के बारे में **अपने** कोई विचार नहीं हैं, तो "आम लोगों" और "औसत लोगों" की इस बहस से आप केवल हमें उकता देंगे। आपको समझना चाहिए कि "राजनीति" और "संगठन" के सवाल अपने आप में इतने गंभीर हैं कि उन पर केवल बहुत गंभीरता से ही विचार किया जा सकता है : हम मजदूरों को (और विश्वविद्यालयों तथा हाई स्कूलों के विद्यार्थियों को) शिक्षा देकर इस **योग्य बना सकते हैं** कि हम उनके साथ इन प्रश्नों पर **चर्चा कर सकें** और हमें उन्हें ऐसी शिक्षा देनी चाहिए; पर जब आप एक बार इन सवालों को उठा देते हैं, तो फिर आपको उनका असली जवाब देना ही चाहिए, "औसत लोगों" या "आम लोगों" की ओर न हटें, कोरी लफ्फाजी करके छुटकारा पाने की कोशिश न करें।

अपने ध्येय के वास्ते पूरी तरह तैयार होने के लिए मजदूर क्रान्तिकारी को भी पेशेवर क्रान्तिकारी बनना होगा। इसलिए ब-व[1] का यह कहना सही नहीं है कि मजदूर चूंकि साढ़े ग्यारह घंटे कारखाने में बिताता है इसलिए (आन्दोलन के काम को छोड़कर) बाकी सभी क्रान्तिकारी कामों का बोझ "**लाजिमी तौर पर** मुख्यतया बहुत ही थोड़े-से बुद्धिजीवियों के कंधों पर आ पड़ता है।" पर ऐसा होना "लाजिमी" नहीं है। ऐसा इसलिए होता है कि हम लोग पिछड़े हुए हैं, क्योंकि हम यह नहीं मानते कि हर योग्य मजदूर को **पेशेवर** आंदोलनकर्ता, संगठनकर्ता, प्रचारक, साहित्य-वितरक आदि बनने में मदद करना हमारा कर्तव्य है। इस मामले में हम बहुत ही शर्मनाक ढंग से अपनी शक्ति का अपव्यय करते हैं; जिस वस्तु की हमें विशेष ध्यानपूर्वक हिफाजत करनी चाहिए, उसकी देखरेख करने की हममें योग्यता नहीं है। जर्मनों को देखिए : उनके पास हमसे सौ गुनी अधिक शक्तियां हैं, परन्तु वे अच्छी तरह समझते हैं कि "औसत लोगों" के बीच से सही माने में योग्य, आंदोलनकर्ता, आदि अक्सर नहीं निकलते हैं इसलिए वे हर योग्य मजदूर को तुरन्त ऐसी परिस्थितियों में रखने का प्रयत्न करते हैं, जिनमें वह अपनी क्षमताओं का अधिक से अधिक विकास तथा उपयोग कर सकेः उसे पेशेवर आंदोलनकर्ता बनाया जाता है, उसे अपने कार्य का क्षेत्र बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है, उसे एक कारखाने से बढ़कर पूरे उद्योग में और एक स्थान से बढ़कर पूरे देश में अपना कार्य-क्षेत्र फैलाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। वह अपने पेशे में अनुभव और दक्षता प्राप्त करता है, वह अपने दृष्टिकोण को व्यापक बनाता है और अपना ज्ञान बढ़ाता है, वह दूसरे स्थानों के और दूसरी पार्टियों के प्रमुख राजनीतिक नेताओं को नजदीक से देखता है। वह खुद भी उनके स्तर तक उठने का प्रयत्न करता है, वह मजदूर वर्ग के वातावरण के ज्ञान तथा समाजवादी विश्वासों की ताजगी का उस पेशेवर कौशल के साथ अपने में समन्वय करने की कोशिश करता है, जिसके बिना सर्वहारा अपने बहुत ही दक्ष शत्रुओं के खिलाफ दृढ़ संघर्ष **नहीं चला सकता।** आम मजदूर इसी तरह और केवल इसी तरह बेबेल और आयर[2] जैसे आदमी पैदा करते हैं।..."

1. ब-व—एक अर्थवादी मजदूर नेता के नाम का संक्षिप्त रूप।

2. बेबेल और आयर—मजदूर वर्ग के भीतर से उभरे मजदूरों के क्रान्तिकारी नेता व सिद्धांतकार।

सांपनाथ या नागनाथ...

(पेज 1 से आगे)

काबिज थे। बसपा-भाजपा के विधायक मंत्री और उनके लग्गू-भग्गू भी सत्ता हाथ से फिसल जाने के बाद हाथ मल रहे हैं। लेकिन खेतों-खदानों-कारखानों में खून-पसीना बहा रहे मजदूरों-किसानों, रेहड़ी-खोमचे वालों, अन्य छोटे-मोटे काम धंधों के सहारे दो वक्त की रोटी जुगाड़ने वाले मेहनतकशों और दफ्तरों के बाबुओं-चपरासियों के लिए सरकारों के आने-जाने से भला क्या फर्क पड़ेगा।

किसी मजदूर को इस बारे में कोई भ्रम नहीं कि नयी सरकार आने से छंटनी-तालाबंदी रुक जायेगी, ठेकेदारी प्रथा खत्म हो जायेगी या काम के घण्टे कम हो जायेंगे और मजदूरी बढ़ जायेगी। उसकी जिन्दगी पहले की ही तरह घिसती रहेगी। उसका पसीना मालिक की तिजोरी भरता रहेगा। गरीब इस मुगालते में नहीं हैं कि नयी सरकार आने से उनके बच्चों की पढ़ाई या उनके दवा-इलाज का इंतजाम हो जायेगा या थाने में दरोगा-थानेदार उनसे इज्जत से पेश आने लगेंगे। करोड़ों बेकारों को भी यह उम्मीद शायद ही होगी कि नयी सरकार उन्हें काम दे देगी।

मतलब यह कि मेहनतकश जनता के किसी भी हिस्से को नयी सरकार बनने से किसी तरह की कोई उम्मीद नहीं है। पिछली सरकारों की तरह मुलायम सिंह यादव की सरकार भी पूंजीपतियों की एक कुशल मैनेजिंग कमेटी का काम करती रहेगी। यह उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों को पूरी मुस्तैदी के साथ लागू करेगी। इन नीतियों को लागू करने में अगर थोड़ा-बहुत ब्रेक लगेगा तो सिर्फ इस कारण कि लोकसभा चुनाव सिर पर है। इसी को ध्यान में रखते हुए सत्ता संभालते ही मुलायम सिंह यादव ने चटपट कुछ लोकलुभावन घोषणाएं कर डाली हैं। सरकारी अस्पतालों में मरीजों का पंजीकरण शुल्क आठ रुपये से घटाकर एक रुपये करना, छात्र संघ चुनावों को अनिवार्य घोषित करना और बेरोजगारों के लिए बेरोजगारी भत्ते की घोषणाएं आगामी चुनाव के मद्देनजर ही की गयी हैं।

मुलायम सिंह यादव इसके पहले भी दो बार प्रदेश के मुख्यमंत्री रह चुके हैं। उनके पुराने कार्यकाल का रिकार्ड घोर मजदूर विरोधी और दमनकारी रहा है। पहले कार्यकाल में डाला और चुर्क सीमेण्ट फैक्टरी बेचने का विरोध कर रहे मजदूरों पर गोलियां बरसाना दर्ज है। दूसरे कार्यकाल में तो रामपुर तिराहे के पास उत्तराखंड आन्दोलनकारियों के ऊपर दमन और अत्याचार सत्ता की बर्बरता की एक मिसाल बन चुका है। अब देखना यह है कि इस नये कार्यकाल में दमन-उत्पीड़न के कौन से कीर्तिमान कायम होते हैं।

नयी सरकार बनने से उन अफसरों की बांछें खिल उठी हैं जिन्हें मायावती ने मलाईदार पदों से हटाकर रूखे-सूखे पदों पर भेज दिया था। इन अफसरों के दुखभरे दिन बीतने के आसार नजर आने लगे हैं। साथ ही गांव-गिरांव और झुग्गी-झोपड़ियों से लेकर राजधानी तक फैले तमाम सपाई "जनप्रतिनिधियों" के दिन भी बहुर गये हैं जो मायावती शासन में "संघर्ष" भरे दिन काट रहे थे। कोटा-परमिट, ठेका-पट्टी से लेकर ट्रांसफर-पोस्टिंग कराने के सुअवसर उनकी झोली में आ गिरे हैं।

थोड़े में कहें तो यह कि सरकार बदलने और शासन बदलने का फर्क आम जनता अपनी जिन्दगी के अनुभव से सीखती जा रही है। देश के मौजूदा संविधान और उसके द्वारा संचालित मौजूदा संसदीय व्यवस्था के दायरे में सरकारें बदलने से राजकाज का ढंग-ढर्रा नहीं बदलता। फर्क सिर्फ यह पड़ता है कि लुटेरों के एक गिरोह की जगह दूसरा गिरोह सत्ता पर काबिज हो जाता है।

सरकारें चाहे राजनीतिक जोड़तोड़ और सौदेबाजी से बनें या जनतंत्र के चुनावरूपी नाटक के जरिए, मेहनतकश अवाम की इसमें कोई भागीदारी नहीं होती। जनतंत्र का सारा खेल मुट्ठी भर ऊपरी धनवान तबकों के बीच सिमटकर रह जाता है। मेहनतकश अवाम के सामने यह सच्चाई दिनोंदिन अधिक से अधिक साफ होती जा रही है। ऐसे में नये रास्तों की तलाश की बेचैनी भी उसके भीतर बढ़ती जा रही है। इसलिए मेहनतकश अवाम के अगुवा तत्वों के ऊपर यह बड़ी जिम्मेदारी आन पड़ी है कि वे दो टूक शब्दों में पूंजीवादी जनतंत्र की असलियत का न केवल भण्डाफोड़ करें बल्कि क्रान्तिकारी विकल्प का खाका भी पेश करें। उन्हें मेहनतकश अवाम के बीच साफ-साफ यह खाका पेश करना होगा कि उत्पादन, राजकाज और समाज के समूचे ढांचे पर उनका नियंत्रण कैसे कायम किया जा सकता है। आम मेहनतकशों के बीच सर्जनात्मक ढंग से क्रान्तिकारी बदलाव के रास्ते और रणनीति-कार्यनीति के बारे में शिक्षित करते हुए गोलबंद और संगठित करना होगा। तभी बदलाव की बेचैनी को बदलाव की प्रचण्ड ऊर्जा में बदला जा सकता है। ●

लूट के माल में अपने हिस्से के लिए एकजुट हुए छोटे लुटेरे

(पेज 1 से आगे)

मद्देनजर जी-21 के देशों के प्रतिनिधियों ने कानकुन में अपनी एकजुटता दिखायी।

इस बात की पूरी सम्भावना है कि डब्ल्यू.टी.ओ. की अगली बैठकों में कोई बीच-बीच का रास्ता निकल आये। कानकुन में भी जी-8 के देश बीच-बीच के कई फार्मूले लेकर आये थे जिन्हें जी-21 के प्रतिनिधियों ने नकार दिया था। पर अगली बैठकों में कोई न कोई समझौता हो ही जायेगा। जूनियर पार्टनर सीनियर पार्टनर के सामने बहुत देर तक नहीं अड़ पायेंगे। इसलिए, कानकुन में जी-8 के मंसूबों की नाकामी पर एन.जी.ओ. वालों और तीसरी दुनिया के दिग्भ्रमित हितैषियों की खुशियां क्षणभंगुर ही साबित होने वाली हैं।

तीसरी दुनिया के देशों का शासक पूंजीपति वर्ग श्रम की विश्वव्यापी लूट का छुटभैया साझीदार बनकर विश्व व्यापार संगठन जैसी संस्थाओं के भीतर सीमित पैमाने पर सौदेबाजियां ही कर सकता है। वह मेहनतकशों के साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष में एक कदम भी साथ नहीं चल सकता। भूमण्डलीकरण के इस दौर की यह नंगी सच्चाई है। इसलिए जो लोग विश्व व्यापार संगठन जैसे मंच के भीतर भारत के किसानों के हितों की रक्षा के लिए गुंजाइश तलाशने की कवायद कर रहे हैं वे मेहनतकशों के साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष की धार को कुंद करने का ही काम कर रहे हैं। विश्व व्यापार संगठन की लुटेरी नीतियां साम्राज्यवाद के आज के दौर की आक्रामक रणनीति का हिस्सा हैं और तीसरी दुनिया के देशों का बुर्जुआ वर्ग इन मंचों में शामिल होकर और सम्राज्यवाद के पाले में खड़ा होकर लूट के माल में अपनी हिस्सेदारी बढ़ाने की कवायद कर रहा है। ऐसे में मेहनतकश अवाम के बीच किसी किस्म के भ्रम का प्रचार करने की बजाय देशी-विदेशी पूंजी की मिली-जुली लूट के खिलाफ निर्णायक संघर्ष के लिए एकजुट करने की जरूरत है।

कानकुन में भारत के पूंजीपतियों की नुमाइन्दगी कर रहे वाणिज्य मंत्री अरुण जेटली जी-21 की एकता के चैम्पियन बनकर स्वदेश लौटे हैं। देश में जगह-जगह उनकी देशभक्ति के कसीदे पढ़े जा रहे हैं। कुछ नासमझ लोग इससे भरमाये जा सकते हैं लेकिन अरुण जेटली और उनकी सत्तारूढ़ पार्टी की देशभक्ति आगामी लोकसभा चुनावों की वजह से उफान पर है इसे समझना कोई कठिन काम नहीं। दरअसल अरुण जेटली को यह सम्मान कानकुन में अपने आका पूंजीपतियों की जबर्दस्त वकालत के कारण मिल रहा है। इसीलिए देश के चोटी के पूंजीपति लुटेरे और उनकी संस्थाएं उन्हें फूलमालाओं से लाद रही हैं। अगला लोकसभा चुनाव बीतने दीजिए, फिर देखिये इन देशभक्तों की देशभक्ति कैसे-कैसे रंग दिखाती है। ●

विशेष सामग्री

(तीसवीं किस्त)

पार्टी की बुनियादी समझदारी

अध्याय - 10

सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी ध्येय के लिए उत्तराधिकारियों का प्रशिक्षण

एक क्रान्तिकारी पार्टी के बिना मजदूर वर्ग क्रान्ति को कतई अंजाम नहीं दे सकता। लेनिन ने इस बात को बार-बार जोर देकर कहा था। स्तालिन और माओ ने भी बराबर इस बात पर जोर दिया और बीसवीं सदी की सभी सफल सर्वहारा क्रान्तियों ने भी इसे सच साबित किया।

लेनिन ने सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी के सांगठनिक उसूलों का निर्धारण किया और इसी फौलादी सांचे में बोल्शेविक पार्टी को ढाला। चीन की पार्टी भी बोल्शेविक पार्टी की ही उत्तराधिकारी थी। सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान, समाजवादी समाज में वर्ग-संघर्ष का संचालन करते हुए माओ के नेतृत्व में चीन की पार्टी ने अन्य युगान्तरकारी सैद्धान्तिक उपलब्धियों के साथ-साथ लेनिनवादी सांगठनिक सिद्धान्तों को भी और अगो विकसित किया।

सोवियत संघ और चीन में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के लिए बुर्जुआ तत्वों ने सबसे पहले यही जरूरी समझा कि सर्वहारा वर्ग की पार्टी का चरित्र बदल दिया जाये। हमारे देश में भी क्रान्ति का रास्ता छोड़ संसदीय रास्ते पर चलने वाली नामधारी कम्युनिस्ट पार्टियां मौजूद हैं। भारतीय मजदूर क्रान्ति को सफल बनाने के लिए भारत में भी सर्वहारा वर्ग की एक सच्ची क्रान्तिकारी पार्टी खड़ी करने का काम सबसे ऊपर है।

इसके लिए बेहद जरूरी है कि मजदूर वर्ग यह जाने कि असली और नकली कम्युनिस्ट पार्टी में क्या फर्क होता है और एक क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी कैसे खड़ी की जानी चाहिए।

इसी उद्देश्य से, फरवरी 2001 के अंक से हमने एक बेहद जरूरी किताब 'पार्टी की बुनियादी समझदारी' के अध्यायों का किस्तों में प्रकाशन शुरू किया है। यह किताब सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान पार्टी-कतारों और युवा पीढ़ी को शिक्षित करने के लिए तैयार की गई श्रृंखला की एक कड़ी थी। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की दसवीं कांग्रेस (1973) में पार्टी के गतिशील क्रान्तिकारी चरित्र को बनाये रखने के प्रश्न पर अहम सैद्धान्तिक चर्चा हुई थी, पार्टी का नया संविधान पारित किया गया था और संविधान पर एक महत्वपूर्ण रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी। इसी नई रोशनी में यह पुस्तक एक सम्पादकमण्डल द्वारा तैयार की गई थी। मार्च, 1974 में पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, शंघाई से इस पुस्तक के प्रथम संस्करण की 4,75,000 प्रतियां छपीं। यह पुस्तक पहले चीनी भाषा से फ्रांसीसी भाषा में अनूदित हुई और 1976 में प्रकाशित हुई। फिर नार्मन बेथ्यून इंस्टीट्यूट, टोरण्टो (कनाडा) ने इसका फ्रांसीसी से अंग्रेजी में अनुवाद कराया और 1976 में ही इसे प्रकाशित कर दिया। प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद मूल पुस्तक के इसी अंग्रेजी संस्करण से किया गया है। —सम्पादक

क्रान्तिकारी ध्येय के लिए उत्तराधिकारियों का प्रशिक्षण और चुनाव संघर्ष के जरिए करो

अध्यक्ष माओ हमें सिखाते हैं : **"सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी ध्येय के लिए उत्तराधिकारी जनसंघर्षों में आगे आते हैं और क्रान्ति के महान तूफानों में उनकी दीक्षा होती है। काडरों को जांचना और जानना तथा जनसंघर्षों के लम्बे दौर में उत्तराधिकारियों को चुनना और प्रशिक्षित करना अनिवार्य है।"** यह वह बुनियादी दिशा है जिसके अनुसार हमें क्रान्ति के उत्तराधिकारियों को प्रशिक्षित करना और चुनना चाहिए; अगर हम अध्यक्ष माओ के निर्देशों को पूरी तरह लागू करें, तो हम सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी ध्येय के लिए उत्तराधिकारियों को सामने लाने और उनके विकास की प्रक्रिया को तेज करेंगे।

एक लोकप्रिय कहावत है कि "हजार साल पुराना चीड़ गमले में नहीं बढ़ता, न ही युद्ध में शामिल होने वाला कोई प्रचण्ड घोड़ा रिंग में कुलांचे भर सकता है।" सर्वहारा वर्ग के उत्तराधिकारियों का पालन-पोषण और दीक्षा केवल जन-संघर्षों के महान तूफानों में ही हो सकती है। मार्क्सवादियों का यह मानना है कि ज्ञान व्यवहार से पैदा होता है। जनता के भीतर संघर्ष का अनुभव, नेतृत्व की कला, और कार्य करने की क्षमता आकाश से नहीं टपक पड़ती; उन्हें क्रान्तिकारी संघर्ष के दौरान ही संचित किया जाता है। कुछ कामरेड युवा काडरों को नेतृत्व के कार्य सौंपे जाने पर चिंतित हैं, जिन्हें वे भारी जिम्मेदारियों को निभाने के लिए अक्षम और राजनीतिक तौर पर पर्याप्त रूप से तैयार नहीं मानते हैं। यह एक गलत दृष्टिकोण है। अध्यक्ष माओ कहते हैं : **"उन्हें कामों में कूद पड़ने दो और करते हुए सीखने दो, और इस तरह वे ज्यादा सक्षम बन जायेंगे। इस रास्ते से बड़ी संख्या में उम्दा लोग आयेंगे। हमेशा "सामने के ड्रैगनों और पीछे के बाघों से" डरते रहने से एक भी काडर नहीं पैदा होंगे।"** (माओ त्से-तुङ, संकलित रचनाएं, "कृषि सम्बन्धी सहकार के सवाल के बारे में", पृ. 390, अंग्रेजी संस्करण)। अगर हम चाहते हैं कि काडर ज्यादा सक्षम बनें, तो हमें उन्हें तीन महान क्रान्तिकारी आंदोलनों में अपनी दीक्षा करने, तूफानों का बहादुरी से सामना करने और वर्ग संघर्ष तथा दो लाइनों के संघर्ष की लहरों पर सवार होकर दुनिया के बारे में सीखने का मौका देना चाहिए। वास्तविक संघर्षों के जरिए वे सर्वहारा अधिनायकत्व के अंतर्गत क्रान्ति को आगे बढ़ाने की अपनी चेतना को ऊपर उठायेंगे, मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ विचारधारा की अपनी समझ को और गहरा बनायेंगे और तीन महान क्रान्तिकारी आंदोलनों के वस्तुगत नियमों का उपयोग करेंगे। उनके काम में उन्हें खुला हाथ देते हुए, सभी स्तरों पर पार्टी संगठनों को उन्हें ठोस रूप से मार्गदर्शन देना चाहिए, ताकि युवा काडर स्थिति को जान पायें, राजनीति को समझ पायें, अपने बूते पर समस्याओं से निपटें और कामों का नेतृत्व स्वयं करें। युवा काडरों से खूब पूछताछ करते हुए, पार्टी संगठनों को उन्हें ठोस मार्गदर्शन देना चाहिए; उन्हें सब कुछ अपने हाथों में लिए बगैर उन पर खूब ध्यान देना चाहिए। पार्टी की राजनीतिक लाइन और सिद्धान्तों के मार्गदर्शन में पार्टी संगठनों को युवा काडरों को अपनी पहल और रचनात्मकता का पूरा इस्तेमाल करने देना चाहिए। हमें उनको व्यवहार में हिम्मत का उच्च स्तर दिखलाने, काम और प्रयोग करने की हिम्मत करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए, ताकि संघर्ष के जरिए वे अपने बूते लड़ने की क्षमता और नेतृत्व की कला को विकसित करें। इस तरह, वे जुझारू व्यवहार के अपेक्षाकृत निम्न स्तर से, राजनीतिक परिपक्वता की कमी से ऐसी परिपक्वता के विशेष स्तर की ओर, कार्य का नेतृत्व एक निश्चित सक्षमता की हद तक कर पाने की ओर आगे बढ़ेंगे।

संघर्ष की प्रक्रिया में क्रान्ति के उत्तराधिकारियों का पालन-पोषण करने के लिए, हमें अध्यक्ष माओ द्वारा सूत्रबद्ध पांच जरूरतों को पूरा करना चाहिए और लोगों को उनकी काबिलियत के हिसाब से तैनात करने की लाइन को लागू करना चाहिए। अध्यक्ष माओ ने बताया है कि सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी ध्येय के उत्तराधिकारियों को **"असली मार्क्सवादी-लेनिनवादी होना चाहिए"**, उन्हें **"ऐसा क्रान्तिकारी होना चाहिए जो पूरे हृदय के साथ चीन और पूरे विश्व की जनता के बहुमत की सेवा करते हैं,"** उन्हें **"विशाल बहुसंख्या को एकमत करने और उनके साथ काम करने में काबिल सर्वहारा राजनीतिज्ञ होना चाहिए"**, उन्हें **"पार्टी की जनवादी केन्द्रीयता को लागू करने में आदर्श होना चाहिए, 'जनसमुदाय से लेकर जनसमुदाय को लौटाने' के सिद्धान्त पर आधारित नेतृत्व की प्रणाली में निपुण बनना चाहिए, एक जनवादी पद्धति विकसित करनी चाहिए और जनता की बात सुनने के मामले में दक्ष होना चाहिए; उन्हें विनम्र और सच्चा होना चाहिए और हेकड़ीबाजी और जल्दबाजी से अपनी रक्षा करनी चाहिए; उन्हें आत्मालोचना की भावना से ओत-प्रोत होना चाहिए और उनके पास अपने काम की गलतियों ओर कमियों को ठीक करने का साहस होना चाहिए।"** अध्यक्ष माओ द्वारा बताई गई ये पांच जरूरतें ही वह सही कसौटी है जिसके साथ सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी ध्येय के लिए उत्तराधिकारियों का प्रशिक्षण और चुनाव करना है। क्रान्ति के उत्तराधिकारियों को प्रशिक्षित करने के लिए पार्टी संगठनों को इन पांच जरूरतों का ईमानदारी से अध्ययन करना चाहिए, पूरी तरह समझना और दृढ़ता के साथ लागू करना चाहिए। हमें सभी स्तरों पर नेतृत्वकारी पदों पर उन शानदार कामरेडों को नियुक्त करने पर जोर देना चाहिए जिनकी महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के आंदोलन में दीक्षा हुई है, जिनके पास दो लाइनों के संघर्ष की चेतना का उच्च स्तर है, जो हर अस्वस्थ रुझान से लड़ने का साहस करते हैं, जो विभिन्न क्षेत्रों में दीक्षित और सक्षम हैं और काफी उत्साह प्रदर्शित करते हैं। हमें मजदूरों, गरीब और निम्न-मध्यम किसानों से शानदार तत्वों को चुनने पर जोर देना चाहिए और स्त्री काडरों और राष्ट्रीय अल्पसंख्यक काडरों को प्रशिक्षित करने पर ध्यान देना चाहिए। नेतृत्वकारी पदों के लिए हमें उन "भले बूढ़ों" को बिलकुल नहीं चुनना चाहिए, जो आकण्ठ अपने व्यावसायिक उद्देश्यों की पूर्ति में डूबे हुए हैं, राजनीति में दिलचस्पी नहीं रखते हैं और किसी की भावनाओं को चोट नहीं पहुंचाना चाहते। साथ ही, हमें स्वार्थी कैरियरवादियों, षडयंत्रकारियों और ख्रुश्चेव जैसे दोमुंहों से सावधान रहना चाहिए, और ऐसे गंदे तत्वों को नेतृत्वकारी निकायों में चोरी से घुस जाने और किसी भी स्तर पर पार्टी और राज्यसत्ता के नेतृत्व को हथियाने से रोकना चाहिए।

क्रान्ति के उत्तराधिकारियों के प्रशिक्षण में हमें बूढ़े, अधेड़ और युवा के "एक-में-तीन" के मेल के सिद्धान्त को सही ढंग से लागू करना चाहिए। महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान व्यापक क्रान्तिकारी जनसमूहों द्वारा "एक-में-तीन" के मेल की रचना मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ त्से-तुङ विचारधारा का जनांदोलनों के साथ एकीकरण की देन थी। दसवीं कांग्रेस में अपनाया गया पार्टी संविधान पार्टी के सांगठनिक उसूल के तौर पर सभी स्तरों पर नेतृत्वकारी निकायों में बूढ़े, अधेड़ और युवा के "एक-में-तीन" का मेल लागू किये जाने को स्पष्ट रूप से परिभाषित करता है; सांगठनिक क्षेत्र में यह हमारी शानदार तरीके से सहायता करता है और अध्यक्ष माओ द्वारा सूत्रबद्ध पांच जरूरतों के मुताबिक क्रान्ति के उत्तराधिकारियों के प्रशिक्षण के लिए बेहद अनुकूल स्थितियां मुहैया कराता है। व्यवहार ने दिखला दिया है कि सभी स्तरों पर नेतृत्वकारी निकायों में बूढ़े, अधेड़ और युवा के मेल का सिद्धान्त संघर्ष की प्रक्रिया में उत्तराधिकारियों को प्रशिक्षित करने का एक अहम औजार है। क्रान्तिकारी संघर्षों के लम्बे दौर में दीक्षित हमारे बुजुर्ग क्रान्तिकारी कामरेडों के पास समृद्ध अनुभव और नेतृत्व क्षमताएं हैं। युवा काडर सीखने को सर्वाधिक उत्सुक, वैचारिक तौर पर सबसे कम रूढ़िवादी, नई चीजों के प्रति काफी खुले रुख वाले, सोचने का साहस करने वाले, बोलने और करने वाले हैं; वे हमारी क्रान्ति के भविष्य और आशा हैं। कई अधेड़ काडर बूढ़े और जवान दोनों ही काडरों की कुछ चारित्रिक विशेषताओं को मिलाते हैं, इसके अलावा वे ऊर्जा से भरपूर होते हैं और नेतृत्वकारी निकायों में केन्द्रीय पदों पर होते हैं। अगर हम सामूहिक नेतृत्व में बूढ़े, अधेड़ और युवा काडरों को पाते हैं जो साथ काम करते हैं, एक-दूसरे से सीखते हैं, एक दूसरे के पूरक होते हैं और साथ प्रगति करते हैं, तो यह न केवल नेतृत्वकारी निकाय को सक्रिय और लड़ाकू भावना से परिपूर्ण बना देता है, बल्कि पुरानी पीढ़ी द्वारा मुहैया कराई गई मदद और प्रशिक्षण के आधार पर युवाओं को अपने आपको और दीक्षित करने और एक छोटे से कालखण्ड के बाद, सर्वहारा अधिनायकत्व के अंतर्गत क्रान्ति को जारी रखने की जिम्मेदारी उठाने के काबिल बना देता है। **(अगले अंक में जारी)**

शहीदेआज़म भगतसिंह के जन्मदिवस (28 सितम्बर) के अवसर पर

"भारत में हम भारतीय श्रमिक के शासन से कम कुछ नहीं चाहते। भारतीय श्रमिकों को—भारत में साम्राज्यवादियों और उनके मददगारों को हटाकर जो कि उसी आर्थिक व्यवस्था के पैरोकार हैं, जिसकी जड़ें शोषण पर आधरित हैं—आगे आना है। हम गोरी बुराई की जगह काली बुराई को लाकर कष्ट नहीं उठाना चाहते।

...हमें यह याद रखना चाहिए कि श्रमिक क्रान्ति के अतिरिक्त न किसी और क्रान्ति की इच्छा करनी चाहिए और न ही वह सफल हो सकती है।"

– 'क्रान्तिकारी कार्यक्रम का मसविदा' से

"भारत के मेहनतकश वर्ग की हालत आज बहुत गम्भीर है। उसके सामने दोहरा खतरा है–विदेशी पूंजीवाद का एक तरफ से और भारतीय पूंजीवाद के धोखे भरे हमले का दूसरी तरफ से खतरा है। भारतीय पूंजीवाद विदेशी पूंजी के साथ हर रोज बहुत से गठजोड़ कर रहा है।...भारतीय पूंजीपति भारतीय लोगों को धोखा देकर विदेशी पूंजीपति से विश्वासघात की कीमत के रूप में सरकार में कुछ हिस्सा प्राप्त करना चाहता है। इसी कारण मेहनतकश की तमाम आशाएं अब सिर्फ समाजवाद पर टिकी हैं और सिर्फ यही पूर्ण स्वराज्य और सब भेदभाव खत्म करने में सहायक साबित हो सकता है। देश का भविष्य नौजवानों के सहारे है। वही धरती के बेटे हैं।"

–हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन का घोषणापत्र

तुम्हारी जोंकों की क्षय

राहुल सांकृत्यायन

राहुल सांकृत्यायन सच्चे अर्थों में जनता के लेखक थे। वह आज जैसे कथित प्रगतिशील लेखकों सरीखे नहीं थे जो जनता के जीवन और संघर्षों से अलग-थलग अपने-अपने नेह-नीड़ों में बैठे कागज पर रोशनाई फिराया करते हैं। जनता के संघर्षों का मोर्चा हो या सामंतों-जमींदारों के शोषण-उत्पीड़न के खिलाफ किसानों की लड़ाई का मोर्चा, वह हमेशा अगली कतारों में रहे। अनेक बार जेल गये। यातनाएं झेलीं। जमींदारों के गुर्गों ने उनके ऊपर कातिलाना हमला भी किया, लेकिन आजादी, बराबरी और इंसानी स्वाभिमान के लिए न तो वह कभी संघर्ष से पीछे हटे और न ही उनकी कलम रुकी।

दुनिया की छब्बीस भाषाओं के जानकार राहुल सांकृत्यायन की अद्भुत मेधा का अनुमान इस बात से भी लगाया जा सकता है कि ज्ञान-विज्ञान की अनेक शाखाओं, साहित्य की अनेक विधाओं में उनको महारत हासिल थी। इतिहास, दर्शन, पुरातत्व, नृतत्वशास्त्र, साहित्य, भाषा-विज्ञान आदि विषयों पर उन्होंने अधिकारपूर्वक लेखनी चलायी। दिमागी गुलामी, तुम्हारी क्षय, भागो नहीं दुनिया को बदलो, दर्शन-दिग्दर्शन, मानव समाज, वैज्ञानिक भौतिकवाद, जय यौधेय, सिंह सेनापति, दिमागी गुलामी, साम्यवाद ही क्यों, बाईसवीं सदी आदि रचनाएं उनकी महान प्रतिभा का परिचय अपने आप करा देती हैं।

राहुल जी देश की शोषित-उत्पीड़ित जनता को हर प्रकार की गुलामी से आजाद कराने के लिए कलम को हथियार के रूप में इस्तेमाल करते थे। उनका मानना था कि "साहित्यकार जनता का जबर्दस्त साथी, साथ ही वह उसका अगुआ भी है। वह सिपाही भी है और सिपहसालार भी।"

राहुल सांकृत्यायन के लिए गति जीवन का दूसरा नाम था और गतिरोध मृत्यु एवं जड़ता का। इसीलिए बनी-बनायी लीकों पर चलना उन्हें कभी गंवारा नहीं हुआ। वह नयी राहों के खोजी थे। लेकिन घुमक्कड़ी उनके लिए सिर्फ भूगोल की पहचान करना नहीं थी। वह सुदूर देशों की जनता के जीवन व उसकी संस्कृति से, उसकी जिजीविषा से जान-पहचान करने के लिए यात्राएं करते थे।

समाज को पीछे की ओर धकेलने वाले हर प्रकार के विचार, रुढ़ियों, मूल्यों-मान्यताओं-परम्पराओं के खिलाफ उनका मन गहरी नफरत से भरा हुआ था। उनका समूचा जीवन व लेखन इनके खिलाफ विद्रोह का जीता-जागता प्रमाण है। इसीलिए उन्हें महाविद्रोही भी कहा जाता है। जनता के ऐसे ही सच्चे सपूत महाविद्रोही राहुल सांकृत्यायन की एक पुस्तिका 'तुम्हारी क्षय' बिगुल के पाठकों के लिए हम धारावाहिक रूप से प्रकाशित कर रहे हैं। राहुल की यह निराली रचना आज भी हमारे समाज में प्रचलित रुढ़ियों के खिलाफ समझौताहीन संघर्ष की ललकार है। –सम्पादक

जोंकें?—जो अपनी परवरिश के लिए धरती पर मेहनत का सहारा नहीं लेतीं। वे दूसरों के अर्जित खून पर गुजर करती हैं। मानुषी जोंकें पाशविक जोंकों से ज्यादा भयंकर होती हैं। इन्होंने मानव-जीवन को कितना हीन और संकटपूर्ण बना दिया, इसका जिक्र कुछ पहले हो चुका था और आगे भी कुछ करेंगे। इन जोंकों की उत्पत्ति कैसे हुई? आरंभिक मनुष्य असभ्य था, वह जंगल में रहता था। लेकिन अपनी जीविका वह धरती में खोजता था। वह शिकार करता था। वह जंगल में फल तोड़ता था, लेकिन दूसरे की कमाई, दूसरे के खून को चूस कर गुजारा करना पसन्द नहीं करता था। आत्मरक्षा के लिए वह अपना नेता भी बनाता था। समाज का साधारण संगठन भी करता था। लेकिन चूसने वाले के लिए वहां स्थान न था। शिकारी अवस्था से मनुष्य पशु-पालक की अवस्था में आया। अब भी उनके नायक और शासक खुद अपनी भेड़ और गायें रखते थे। हां, अब कभी-कभी एक-आध भेड़-गाय उनके पास पहुंचने लगी और इस प्रकार बहुत हल्के रूप में मानुषी जोंकों का आविर्भाव हुआ। कृषक की अवस्था में पहुंचने पर नेता और शासकों का प्रभाव और बढ़ा। उन्होंने राजा का रूप धारण करना शुरू किया। यद्यपि पहले समाज की आत्मरक्षा के लिए शस्त्र और शासन की सुव्यवस्था का भार उन पर सौंपा गया था और उनका पद तभी तक सुरक्षित था जब तक कि उन कार्यों के संचालन की योग्यता उनमें मौजूद रहती। योग्यता द्वारा निर्वाचित राजा भेंट और कर में अधिक धन एकत्र करने में सफल हुआ और इस प्रकार योग्यता के अतिरिक्त धन की शक्ति उसके हाथ आई। अब जहां वह अपने शासक और नेता होने के जरिए लोगों पर प्रभाव डालता था, वहां धन का प्रलोभन देकर के भी कुछ लोगों को अपनी ओर खींच सकता था। इस तरह वह जहां कितने ही अत्याचार भी करने का साहस रखता था, वहां साथ ही यह भी कोशिश करने लगा कि उसके बाद उसका स्थान उसके लड़के को मिले। शताब्दियों के प्रयत्न से योग्यता का सबब भाड़ में चला गया और राजा की ज्येष्ठ संतान राजा बनने लगी। सम्पूर्ण राज-परिवार का खर्च दूसरों के ऊपर लदने लगा। इन जोंकों ने यही नहीं कि अपनी परिवरिश दूसरों की कमाई से चलानी शुरू की, बल्कि कितने ही धरती से धन उपजाने वाले को भी नौकर-परिचारक रखकर समाज को उनके श्रम से वंचित रखा। खानदानी राजा तब तक इस प्रकार शोषण, निठल्लापन और अपनी वासना-तृप्ति के लिए तरह-तरह की गन्दगी फैलाते रहते जब तक कि जनता को ऊबते देखकर कोई सेनापति या मंत्री राजा का वध कर नये राजवंश की नींव नहीं डालता। जब से राजा अधिक सम्पत्ति, का स्वामी और गैर-जवाबदेह शासक बनने लगा, तब से 'यथा राजा तथा प्रजा' का अनुकरण करते हुए कितने ही लोग स्वयं भी जोंक बनकर आराम से सुख और चैन की जिन्दगी बसर करने लगे। राजा भी प्रलोभन दे-देकर उन्हें इसके लिए उत्साहित करते थे। धरती से धन पैदा करने वाले का स्थान समाज में बहुत नीचा हो गया था और राजा, राजकुमार, पुरोहित, मंत्री, सामंत ही नहीं, बल्कि उनके परिचारक भी धन कमाने वालों से अधिक सम्मानित समझे जाते थे। शारीरिक श्रम को बहुत हेय दृष्टि से देखा जाता था। अब जोंकों की एक और श्रेणी भी पैदा हो गयी जो कारीगरों और किसानों द्वारा उत्पादित चीजों के क्रय-विक्रय का काम करती थी। इन साधारण बनियों ने लाभ-वृद्धि के साथ-साथ अपने काम को भी अधिक विस्तृत और सुव्यवस्थित किया। इनके बड़े-बड़े दल (कारवां) देश के एक कोने की चीज दूसरे कोने में पहुंचाते और आंख मूंदकर नफा कमाते थे। राजा, राजकुमारों के बाद अपनी राज-सेवा के उपहार में जिन मंत्रियों और सेनानायकों को बड़ी-बड़ी जागीरें मिलीं, वे भी महत्वपूर्ण स्थान रखते थे, और उनके बाद नम्बर था बनियों का। समाज में अब भी पुराना भाव कभी-कभी मौज मारता था जबकि किसान की कमाई को सबसे शुभ कमाई समझा जाता था। राजचाकरी और वाणिज्य को निम्न श्रेणी की जीविका मानते थे, लेकिन दुनिया का सुख और वैभव तो उसी के लिए है जिसके पास धन है, चाहे वह धन किसी भी तरह प्राप्त किया गया हो। राजकार्य और व्यापार की तो बात ही क्या, सूद के लाभ—जिसे कि पाप का धन अभी हाल तक समझा जाता रहा है—को भी कोई छोड़ने के लिए तैयार न था। सामन्त दासों और अर्द्ध दास किसानों की पलटन से खेती कराते तथा कारीगरों से बेगार में चीजें तैयार कराते। व्यापारी स्थल और जलमार्ग से व्यापार ही नहीं करते थे, बल्कि कभी-कभी कुछ कारीगरों को जमा कर उनसे वाणिज्य की कितनी ही चीजें भी बनवाते थे। बिना मेहनत की कमाई अब सबसे इज्जत की कमाई हो गई थी। और क्यों न हो, जब कि हजारों बरस से पुरोहित लोग खुद इस लूट के नफे से मौज करते आ रहे थे। उन्हीं के हाथ में भले-बुरे की व्यवस्था थी।

बढ़ते-बढ़ते अवस्था जब यहां तक पहुंची तो समझा जाने लगा कि राजा अपनी पुरानी तपस्या का उपभोग करने या खुदा की न्यामत को हासिल करने के लिए धरती पर आया है, तब बहुत हुआ तो राजवंश के संस्थापक प्रथम व्यक्ति ने कुछ योग्यता का परिचय दिया और उसके उत्तराधिकारी—चाहे योग्य हो या अयोग्य, सिर्फ भोग-विलास के लिए राजसिंहासन पर बैठते थे। मुफ्त के भोगविलास को देखकर किसके मुंह में पानी न भर आता। और उसके लिए जब राजा लोग आपस में लड़ने लगते, तो योग्य सेनानायकों का महत्व बढ़ना जरूरी था। फिर उनकी जागीरें बढ़ीं और हालत यहां तक पहुंची कि राजा सामन्तों के हाथ की कठपुतली हो गया।

शिकार और कृषि के साथ पहले जोंकों का जन्म होता है। राजशाही युग में उनकी संख्या कुछ बढ़ती है और राजकुमार, राजकर्मचारी, व्यापारी तथा इनके परिचारक जोंकों की श्रेणी में शामिल होकर संख्या को और बढ़ा देते हैं। जब राजा सामन्तों के हाथ की कठपुतली हो जाते हैं, तब सामन्तों की स्वेच्छाचारिता का पृष्ठपोषण करना भी अपना कर्तव्य समझते हैं—ऐसी सामन्तशाही के युग में जोंकों की संख्या कई गुना बढ़ जाती है। इस युग का अन्त होने के समय यूरोप के बनियों को अपना प्रभाव बढ़ाने का नया मौका मिलता है। "वाणिज्ये बसते लक्ष्मीः" की कहावत प्रसिद्ध ही है। इंगलैण्ड के व्यापारी भी पुर्तगाल, स्पेन आदि के व्यापारियों की देखादेखी दुनिया के दूर-दूर देश में व्यापार करने लगे। इंगलैण्ड में उनेक पास अपार सम्पत्ति जमा होने लगी। यूरोप के भिन्न-भिन्न देशों में व्यापार के सम्बन्ध में प्रतिद्वन्द्विता बढ़ने लगी, तो भी धरती का बहुत-सा हिस्सा अछूता था और सभी साहसियों के लिए कहीं न कहीं काम का क्षेत्र मौजूद था। अट्ठारहवीं शताब्दी के अन्त तक यूरोप के व्यापारियों में अंग्रेजों ने प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया था। उनके पास दुनिया में सबसे अधिक बाजार थे। उनके माल से भरे जहाज इंगलैण्ड से बाजारों को और बाजारों से इंगलैण्ड को छह-छह महीने चलकर पहुंचाते थे। उस समय की लकड़ी की नावों—जिन्हें पाल और पतवार के सहारे एक जगह से दूसरी जगह ले जाया जाता था—में यात्रा बड़ी संकट की थी, लेकिन अपार नफे के सामने संकट क्या चीज थी। व्यापारियों को सबसे अधिक चिन्ता थी—अधिक से अधिक परिमाण में माल कैसे तैयार हो। इसी समय इंगलैण्ड में इंजिन का आविष्कार हुआ। भाप से चालित यंत्र अधिक परिमाण में और ज्यादा तेजी के साथ माल तैयार करने लगा। इंजिनों को रेल और जहाज में लगा देने पर लम्बी-लम्बी यात्रायें भी छोटी हो गईं और खतरा तथा परतंत्रता भी कम होती गई।

यंत्रों के आविष्कार से, उनके द्वारा बनी चीजों की अपेक्षा हाथ की बनी चीजें महंगी पड़ने लगीं और हाथ के कारीगर बेकार होने लगे। बेकारी से कुपित होकर कारीगरों ने कितने ही कारखानों को तोड़ा, जगह-जगह बलवे हुए। लेकिन अब व्यापारियों की शक्ति साधारण नहीं रह गयी थी। धन के कारण राजदरबारों में उनका प्रभाव और सम्मान सामंतों की तरह होने लगा था और धन के बल पर शासन-यंत्र पर वह अपना अधिकार जमा रहे थे। जिस यंत्रचालित कारखानेदार—पूंजीपति के पीछे राजशक्ति थी, उसका मुकाबला ये कारीगर क्या करते? धीरे-धीरे उनके बलवे तो ठंडे पड़ गये जिसमें दमन के अतिरिक्त एक यह भी कारण था कि यांत्रिक कारखाने मुख्यतः इंगलैण्ड में ही स्थापित हुए थे और इंगलैण्ड के पास सारी दुनिया का बाजार पड़ा हुआ था। इस प्रकार वहां के पूंजीपति सभी कारीगरों को बेकार न करके उन्हें नये-नये कारखानों में लगाते जाते थे। जैसे ही जैसे व्यापार चमकता गया वैसे ही वैसे पूंजीपतियों के पास अपार धनराशि जमा होती गयी। वहां का राज शासन भी पूंजीपतियों के हाथ चला गया और राजशाही या सामन्तशाही सरकार की जगह पूंजीवादी सरकार स्थापित हुई। इसका पवित्र कर्तव्य था पूंजीपतियों के स्वार्थों की रक्षा करना।

इस नई आर्थिक व्यवस्था से संसार में तरह-तरह की उथल-पुथल होने लगी। देश के श्रमिक पूंजीपतियों के अर्थदास बनने लगे। जिन देशों पर पूंजीवादियों का शासन था, वहां पर भी उसी स्वार्थ को सामने रखकर काम लिया जाने लगा। इंगलैण्ड में सामन्तशाही का स्थान पूंजीशाही ने लिया था, किन्तु हिन्दुस्तान में उस वक्त तक सामन्तशाही ही चल रही थी। तो भी अंग्रेजी पूंजीशाहों ने अपने देश की तरह हिन्दुस्तान से सामन्तशाही को लुप्त होने नहीं दिया। उसी का परिणाम है कि यद्यपि सारे भारतवर्ष पर अंग्रेजी पूंजीशाही का शासन है तो भी भीतर में सामन्तशाही को रियासतों और बड़ी-बड़ी जमींदारियों के रूप में कायम रखा गया है। पूंजीवाद मनुष्यों को अर्थदास बनाता है और बराबर बेकारी पैदा करके उन्हें नरक की यातना में ढकेलता है, यह बात तो अब स्पष्ट हो चुकी थी। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक बाजारों और साम्राज्य के विस्तार के लिए आपस में लड़ती यूरोप की राजशक्तियों ने यह भी दिखला दिया था कि पूंजीवाद युद्धों का प्रधान कारण है।

इसी समय जर्मनी में एक विचारक पैदा हुआ जिसका नाम था कार्ल मार्क्स। उसने बतलाया कि बेकारी और युद्ध पूंजीवाद के अनिवार्य परिणाम रहेंगे बल्कि जितना ही पूंजीवाद की संरक्षकता में यंत्रों का प्रयोग बढ़ता जायेगा, बेकारी और युद्ध उतना ही भयानक रूप धारण करते जायेंगे—उसने इससे बचने का एक ही उपाय बतलाया—साम्यवाद। जर्मनी, फ्रांस—जहां भी उसने अपने इन विचारों को प्रकट किया, वहां की सरकारें उसके पीछे पड़ गईं। पूंजीपति समझ गये कि साम्यवाद उनकी जड़ काटने के लिए है। उसमें तो सारी सम्पत्ति का मालिक व्यक्ति न होकर समाज रहेगा। उस वक्त हर एक को अपनी योग्यता के मुताबिक काम करना पड़ेगा और आवश्यकता के मुताबिक जीवन-सामग्री मिलेगी। सबके लिए उन्नति का मार्ग एक-सा खुला रहेगा। कोई किसी का नौकर और दास नहीं रहेगा। भला धनी इसे कब पसन्द करने वाले थे? लेकिन अभी तक मार्क्स के विचार सिर्फ हवा में गूंज रहे थे। मजदूरों पर उनका असर बिलकुल हल्का-सा पड़ रहा था, इसलिए पूंजीवादियों का विरोध तेज न था—खास करके जबकि उन्होंने देखा कि एक समय के आग उगलने वाले प्रलोभनों को हाथ में आया पाकर वे पूंजीवाद के सहायक बन सकते हैं। दुनिया की जोंकों ने समझा कि साम्यवाद हमेशा हवा और आसमान की चीज रहेगा और उसे कभी ठोस जमीन पर उतरने का मौका नहीं मिलेगा।

पूंजीवाद धीरे-धीरे हर मुल्क में बढ़ रहा था। यूरोप में तो उसकी गति बड़ी तेज थी। अंत में सिपाहियों का देश जर्मनी भी उसकी बाढ़ से न बच सका। बल्कि प्रतिभाशाली जर्मनों ने

(पेज 11 पर जारी)

पद

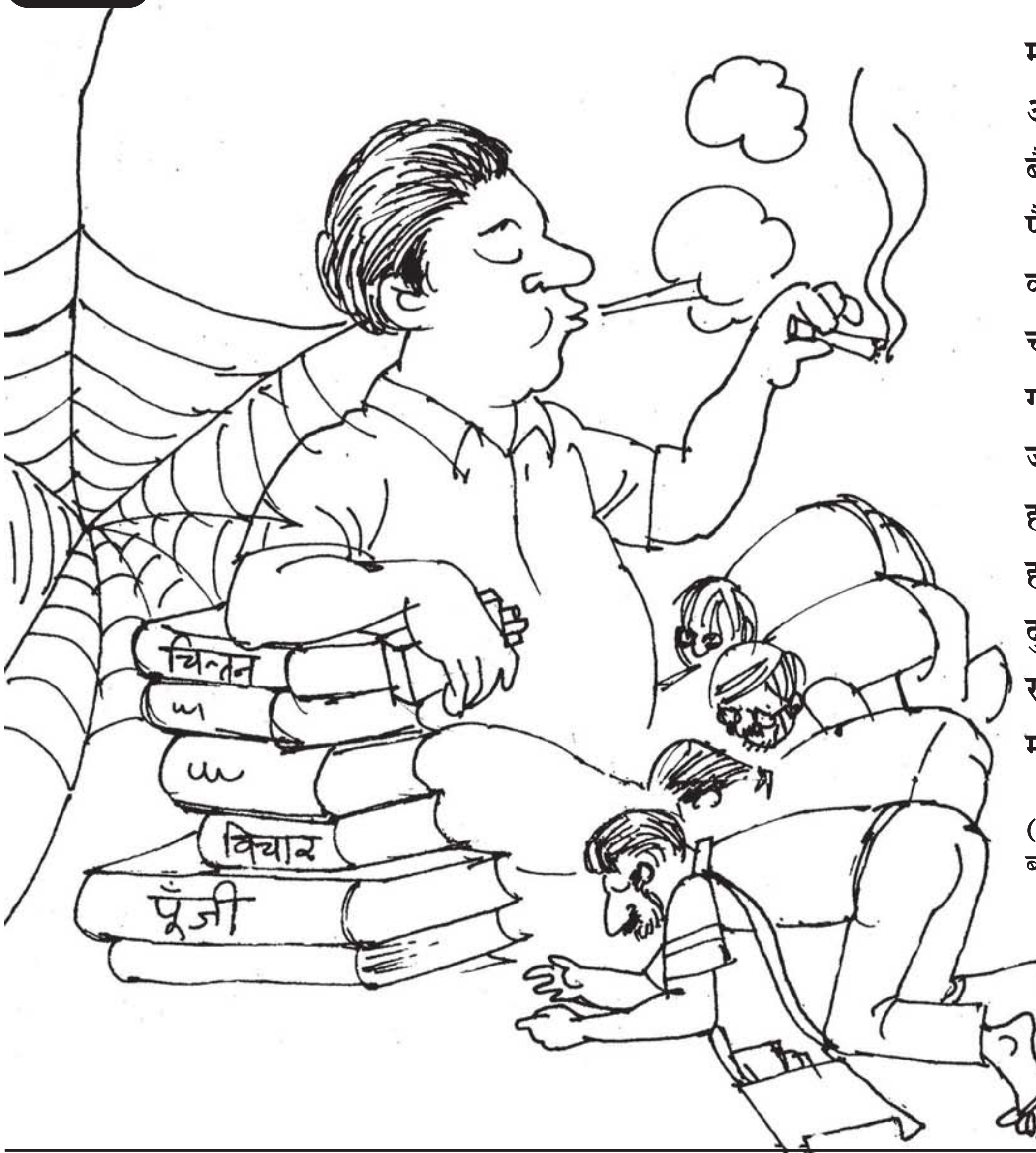

माधव हम परिनाम निरासा।
अनुभव घट जब रीत गयो, तब बाजा ताहि बनायो।
बैठि मियाँ की मल्हार छेड़िन्हि, जीवन–धन बिसरायो।
पैठि गुफा में ध्यान लगा चिन्तन का अण्डा सेऊँ।
कोलम्बस बन पोखर में कागज की नैया खेऊँ।
चेलन को जब राह सुझायो, चेले झट मुड़ियायो।
गच्चा खायो गजब हम भइया, इनके कहे पतियायो।
जो जो जाय धंसै जनता में, बहुरि लौटि ना आयो।
हम इक बचे जहाज के पंछी, पुनि जहाज पै आयो।
हम धृतराष्ट्र महाभारत के, निकट न संजय कोई।
दुखवा कासे रोउँ रे सजनी, काटुँ वही जो बोई।
रावण जस मदमत्त भयो, ठलुअन से बाँधी आसा।
मूर्खन बिच अस फँसे कि मरु बिच जैसे मरत पियासा।

(पुरानी पीढ़ी के उन क्रान्तिकारियों के नाम, जो क्रान्ति–पीठों के महामण्डेश्वर बनने के चक्कर में पड़ गये और पुरातात्विक महत्व की सामग्री बन गये।)

● मनबहकी लाल

तुम्हारी जोंकों की क्षय

(पेज 10 से आगे)

यंत्रों के आविष्कार और प्रयोग में और भी अधिक योग्यता दिखलायी। पूंजीवादी सरकारों ने दांव-पेंच लगाकर दुनिया के हिस्से-बखरे कर लिये। जर्मनी ने देखा कि उसके लिए तो कहीं जगह नहीं। इसके लिए उसने वर्षों की तैयारी की, क्योंकि वह जानता था कि हथियार के बल पर उसे नया बाजार मिल सकता है। इसी आकांक्षा, इसी तैयारी का परिणाम था 1914 ई. का महायुद्ध। पूंजीवादी फैक्टरियों में गरीबों का खून चूसकर तृप्त न थे। वे बाजार और नफा लूटने के लिए बड़े पैमाने पर नर-संहार करना चाहते थे। जो कहते हैं कि महायुद्ध आस्ट्रिया के युवराज की हत्या के कारण हुआ था, वे या तो भोले-भाले हैं या जान-बूझकर झूठ बोलते है। युद्ध हुआ था जोंकों की खून की प्यास के कारण। जर्मनी की जोंकें परास्त हुई। फ्रांस और इंगलैण्ड की जोंकें विजयी। इन जोंकों की लड़ाई में एक फायदा हुआ कि दुनिया के छठे हिस्से—रूस से जोंकों का राज उठ गया। अब वहां ईमानदारी से कमाकर खाने वालों का राज है। आरम्भ में दुनिया की जोंकों ने पूरी कोशिश की कि वहां साम्यवादी शासन न होने पाये। लेकिन रूस की मजदूरों और किसानों ने हर तरह की कुर्बानी करके, जान पर खेलकर अपनी स्वतंत्रता की रक्षा की। लेनिन के नायकत्व में संस्थापित रूस की साम्यवादी सरकार आज दुनिया की जोंकों की आंखों में कांटे की तरह चुभ रही है। सारा पूंजीवादी जगत देख रहा है कि दुनिया के सभी मजदूर-किसान रूस की तरफ स्नेह भरी निगाह से देखते हैं और उससे अन्तःप्रेरणा ले रहे हैं।

महायुद्ध के अन्त में जोंकों की रक्तपिपासा के नंगे नाच को देखकर तथा रूस की क्रान्ति से प्रभावित होकर यूरोप के कितने ही देशों के मजदूरों में साम्यवाद का जोर बढ़ा। सामग्री तैयार थी, उसका उपयोग करके वहां भी साम्यवादी शासन स्थापित करने के लिए। लेकिन श्रमजीवियों का नेतृत्व जिन कमजोर दिलवाले शिक्षितों के कंधों पर था, उन्होंने अपनी कायरता और कमजोरी को जनता के मत्थे मढ़ा और इस प्रकार श्रमजीवी-जागृति का वह वेग विशृंखलित हो गया। पूंजीपति महत्वाकांक्षी साम्यवादी नेताओं—जो कि आपस में होड़ और अनबन के कारण अपने लिए किसी बड़ी चीज की आशा न रखते थे—को आसानी से अपनी ओर मिला सकते थे, इसके लिए सिर्फ दो चीजों की जरूरत थी। एक तो आदर्श-द्रोही नेता को नेतृत्व दे दिया जाये और इसमें पूंजीवाद को कोई नुकसान तो था नहीं, दूसरे, उसी थैली से मदद दी जाये और यह बात भी पूंजीपतियों के लिए कड़वी नहीं थी, क्योंकि उनके हाथ से सारी की सारी थैली को मजदूर छीन लेने वाले थे। इस प्रकार पूंजीवाद ने नया रूप—'फासिज्म' धारण किया। उसने असली उद्देश्य को छिपाकर सामन्तशाही के विनाशक पूंजीवाद के हथकंडे इस्तेमाल किये और राष्ट्रीयता के नाम पर जनता को अपने झंडे के नीचे एकत्रित होने के लिए आवाहन किया। वर्षों से मजदूर और किसान अपने शिक्षित मध्यम श्रेणी के साम्यवादी नेताओं की कायरता और विश्वास से तंग आ गये थे। उन्होंने फासिज्म को राष्ट्रीय पुनरुज्जीवन का संदेशवाहक समझकर मदद दी, और, इस प्रकार फिर से पूंजीवाद ने अपने को मजबूत किया। शोषकों और शोषितों को कायम रखने वाले फासिज्म श्रमिकों के दुखों को भीतर से दूर कर नहीं सकते थे, इसलिए उन्होंने दूसरे देशों पर नजर गड़ायी। इटली में फासिज्म के जन्म का यह इतिहास है।

जर्मनी की जोंकें भी महायुद्ध में पराजित हुईं, लेकिन विजेता कभी यह नहीं चाहते थे कि पराजित जोंकें बिल्कुल नष्ट कर दी जायें। वह जानते थे कि जर्मनी में जोंकों का लोप इंगलैण्ड और फ्रांस पर पूरा प्रभाव डालेगा। इसलिए उन्होंने उन्हें जीते रहने दिया। लड़ाई के बाद जर्मनी के श्रमजीवी भी अपने देश की जोंकों के अत्याचार को देखते-देखते तंग आ गये थे और उनमें बड़ी जागृति हुई तो भी शब्द के प्रयोग में प्रवीण, किन्तु मैदान में अत्यन्त कायर शिक्षित नेतागण ने उन्हें धोखा दिया और वे स्वर्ण-युग को लाने का दिलासा दे-देकर दिन बिताते रहे। जोंकें इतनी बेवकूफ न थीं। वे अवसर ताक रही थीं। जब साम्यवादी इस तरह अपने कीमती समय को बरबाद कर रहे थे, उस समय जोंकें भी मंसूबे बांध रही थीं। युद्ध के बाद की घटनाओं को देखकर पूंजीवादियों को विश्वास हो गया कि उनके स्वार्थों की रक्षा वही कर सकता है जो स्वयं श्रमजीवी-श्रेणी का हो और जिसके दिल में पूंजीवादी श्रेणी के अस्तित्व की आवश्यकता ठीक जंचती हो। नात्सिज्म ने जर्मनी में जातीय पराभव और अपमान के नाम पर लोगों को अपनी ओर खींचना शुरू किया। पूंजीवादियों ने हिटलर के भूरी कमीज वाले संगठन को दृढ़ करने के लिए अपनी थैलियां खोल दीं। नेताओं के विश्वासघात से पीड़ित और कर्तव्यविमूढ़ श्रमजीवी-श्रेणी धीरे-धीरे हिटलर के फरेब में फंसने लगी और 1933 तक उसने अपनी शक्ति इतनी मजबूत कर ली कि शासन की बागडोर उसके हाथ आ गई। हिटलर के शासन के चार वर्षों—1933 से 1937 के बीच मजदूरों की जीवन-वृत्ति जर्मनी में आधी हो गई और पूंजीपति चैन की बांसुरी बजाने लगे तो भी पूंजीवाद के नये अवतार फासिज्म और नात्सिज्म श्रमजीवी जनता की आंख में धूल झोंकना अच्छी तरह जानते हैं। हिटलर ने जर्मनी के स्वाभिमान को लौटाने और वृहत्तर जर्मनी के निर्माण का प्रोग्राम उनके सामने रखा। फ्रांस और इंगलैण्ड का पूंजीवाद पूंजीपतियों के वैयक्तिक स्वार्थ और अदूरदर्शिता के कारण श्रमजीवी जनता को अपनी ओर उतना खींच नहीं सकता था, इसलिए उन्हें फूंक-फूंककर कदम रखना पड़ता था। उधर जर्मनी पूंजीपतियों के स्वार्थ को आंख से ओझल रखकर राष्ट्रीय महत्वाकांक्षा को जबर्दस्त शराब पिला रहा था। दोनों ही तरफ जोंकों के स्वार्थ का सवाल था, और दोनों ही तरफ की जोंके अपने-अपने स्वार्थ के लिए जबर्दस्त तैयारियां कर रही थीं।

तीन वर्ष की तैयारी के बाद हिटलर ने जर्मन-स्वाभिमान लौटाने के लिए सबसे पहले कुछ करना चाहा। जापान ने मंचूरिया को हड़प कर दिखला दिया था कि इंगलैण्ड, फ्रांस और अमेरिका के पूंजीवादी आपस में असहमत और लड़ाई के लिए तैयार नहीं हैं। वह फ्रांस और इंगलैण्ड के भीतर मतभेदों को भी जानता था और समझता था कि इंगलैण्ड सिर्फ अपनी पगड़ी बचाना चाहता है। यही समझकर 7 मार्च 1936 ई. को हिटलर ने जर्मन फौजें राइनलैण्ड में उतार दीं और फ्रांस तथा इंगलैण्ड मुंह ताकते रह गये। दो बरस चार दिन बाद—जबकि मुसोलिनी अबीसीनिया में इंगलैण्ड की कलई खोल चुका था—11 मार्च, 1938 को हिटलर ने आस्ट्रिया को हड़प लिया। बाहर की जोंकें तिलमिला कर रह गई। लेकिन जर्मन जोंकों की प्यास न इतने से बुझ सकती थी और न जर्मन जनता को चिरकाल तक माखन छोड़ आलू खाने के लिए तैयार रखा जा सकता था। आलू खाने को राजी रखने के लिए न जाने अभी हिटलर को और कितने काण्ड करने होंगे। 1 अक्टूबर 1938 ई. को हिटलर ने सुडेटेनलैंड को चेकोस्लोवाकिया से छीन लिया और 15 मार्च, 1938 ई. को सारी चेकोस्लोवाकिया को अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। दुनिया भर की जोंकें अगले युद्ध के लिए जबर्दस्त तैयारियां कर चुकी हैं। अगले युद्ध के नर-संहार के सामने पिछला महायुद्ध कोई अस्तित्व नहीं रखेगा। जर्मनी के पास जहां अब आठ करोड़ आदमी जोंकों के लिए नये बाजार पर कब्जा करने के वास्ते खून बहाने को तैयार हैं, वहां उसने हवाई, सामुद्रिक और स्थानीय युद्धों के लिए भयंकर अस्त्र-शस्त्र तैयार कर रखे हैं। अब उसके हवाई जहाजों की एक चढ़ाई में पौन करोड़ आबादी का लंदन निर्जन हो सकता है। लड़ाई में मरने वाले सिर्फ सैनिक नहीं रहेंगे, अब तो मरने वालों में अधिक संख्या होगी निरपराध नागरिकों की। कोई बूढ़े बच्चों की परवाह नहीं करेगा। सभी जोंकें बड़े जोश के साथ संसार में प्रलय लाने की तैयारियां कर रही हैं। जिस वक्त मनुष्य जाति ने अपने भीतर पहली जोंक पैदा की थी, उस वक्त उसे क्या मालूम था कि जोंकें बढ़कर आज उसे यह दिन दिखायेगी। इसके विनाश के बिना संसार का कल्याण नहीं। जोंको! तुम्हारी क्षय हो! ●

पंजीयन संख्या - 71980/99, डाक पंजीयन संख्या - LW-NP/349/2003

हत्यारे एरियल शैरोन की अगवानी में भारत सरकार ने पलक-पांवड़े बिछाये

बिगुल संवाददाता

दिल्ली। पिछले 8-10 सितम्बर को देश की सरकार ने एक क्रूर युद्ध अपराधी और जघन्य हत्यारे के स्वागत में पलक-पांवड़े बिछा दिये। उसके खून सने हाथों से हाथ मिलाये गये और हर इंसानी जज्बे और मूल्य के प्रति जहरीली नफरत से भरे उसके सीने को फूलमालाओं से लाद दिया गया। यह आदमी था इस्रायल का प्रधानमंत्री एरियल शैरोन–जिसके सिर पर हजारों बेकसूर लोगों का खून है। यह शख्स मानवता के इतिहास के कुछ घृणिततम हत्याकाण्डों का खलनायक है।

हिन्दुस्तान और इस्रायल के हुक्मरानों की यह दोस्ती अपने वतन की आजादी के लिए बरसों से बेमिसाल कुर्बानियां दे रही फलस्तीनी अवाम के लिए ही नहीं वरन समूचे दक्षिण एशिया के अमनपसन्द-इन्साफपसन्द अवाम के लिए एक भीषण खतरा बनकर सामने आने वाला है। यह खतरा कितना बड़ा है इसे एरियल शैरोन की भारत यात्रा के मकसद से ही समझा जा सकता है।

एरियल शैरोन की भारत यात्रा का अहम मकसद हथियारों की खरीद-फरोख्त और खुफिया जानकारियों के लेन-देन सम्बन्धी समझौते करना था। विभिन्न क्षेत्रों के व्यापारिक समझौते तो फिलहाल इस यात्रा के दोयम महत्व के मसले थे। शैरोन के साथ भारी संख्या में आये भारी संख्या में हथियारों के सौदागर और फौजी रणनीतिकारों से भी उसकी यात्रा के असली मकसद को समझा जा सकता है। भाजपा सरकार खासकर इस्रायल की फाल्कन रडार प्रणाली को खरीदने के लिए बेचैन है। इस्रायल इसके लिए तैयार हो गया है लेकिन इसमें पेंच यह है कि इसके लिए अमेरिका की भी हरी झण्डी चाहिए। अगर भारत सरकार को 'फाल्कन' मिल गया तो इससे वह समूचे दक्षिण एशिया में फौजी जासूसी करने के काबिल होगा। इसके बदले में भारत इस्रायल को अनेक खुफिया जानकारियां मुहैया करायेगा।

शैरोन की यात्रा की समाप्ति पर दोनों देशों द्वारा संयुक्त रूप से जो बयान जारी किया गया उसमें जिस "आतंकवाद से साझा लड़ाई" लड़ने का संकल्प जाहिर किया गया है उसका अर्थ बिल्कुल साफ है। आतंकवाद के नाम पर भारतीय शासक वर्ग अपनी आजादी के लिए लड़ रहे फलस्तीनी अवाम को कुचलने में मदद करेगा और इस्रायल हमारे देश में जनसंघर्षों को कुचलने में मदद करेगा।

यह भूला नहीं जा सकता कि अपने वतन के लिए लड़ रही फलस्तीनी जनता के संघर्ष को शुरू से ही हिन्दुस्तानी अवाम का और उसके दबाव में देश की सरकारों का समर्थन मिलता रहा है। लेकिन साम्राज्यवादी भूमण्डली-करण के दौर में दुनिया की बदली हुई आबो-हवा में भारतीय शासकों ने फलस्तीनी अवाम से गद्दारी करके इस्रायली शासकों के साथ प्रेम की पींगें बढ़ाना शुरू कर दिया। सबसे पहले नरसिंह राव की कांग्रेसी सरकार ने इस्रायल को मान्यता देकर इस नयी दोस्ती की शुरुआत की। बाद में आने वाली सभी सरकारों ने इस दोस्ती को लगातार मजबूत बनाया। और संघ कबीले की सरकार ने आते ही फलस्तीनी मुक्ति संघर्ष से पूरी तरह गद्दारी करके दमनकारी इस्रायली सत्ता के साथ गलबहियां डाल लीं। भला वे ऐसा क्यों नहीं करते? आजादी की लड़ाई से गद्दारी उनके खून में जो है!

सत्तर लाख यहूदियों को मौत के घाट उतारने वाले हिटलर के प्रशंसक भाजपाइयों का कुनबा इस्रायली शासकों से गांठ जोड़ने के लिए शुरू से बेताब रहा है और इस्रायली हुक्मरान भी हिटलर के इन मानसपुत्रों की अपने यहां बड़े प्यार से अगवानी करते रहे हैं। लालकृष्ण आडवाणी पहले ही इस्रायल की यात्रा कर लौट चुके हैं और शैरोन वाजपेयी को भी न्यौता दे गया है। इसमें हैरानी की कोई बात नहीं है। आखिर इस्रायली सत्ता खुद भी तो हिटलर के ही पदचिह्नों पर चलती रही है।

एरियल शैरोन के वापस इस्रायल लौटने के बाद प्रधानमंत्री अटल बिहारी बाजपेयी ने अरब शासकों को खुश करने की गरज से पलटी मारते हुए यह सफाई दे डाली कि भारत फलस्तीन की आजादी के सवाल को हल करने के प्रति वचनबद्ध है। वाजपेयी का यह बयान भारतीय शासक पूंजीपति वर्ग की दोनों हाथ से लड्डू खाने की नीति की देन है। वह इस्रायल से भी दोस्ती गांठना चाहता है और अरब शासकों को नाराज भी नहीं करना चाहता। वाजपेयी की यह वचनबद्धता फलस्तीनी अवाम की आजादी के प्रति नहीं वरन अरब शासकों के प्रति है। यूं अरब शासक भी सिर्फ अपने देश की जनता के दबाव में ही मजबूरन फलस्तीनी आजादी के समर्थक रहे हैं, दिल से कभी भी वे साथ नहीं देते रहे हैं।

हिन्दुस्तान की सरजमीं पर एरियल शैरोन जैसे कातिल का स्वागत एक शर्मनाक हादसा है। लेकिन पंजाब के शहीद इंकलाबी शायर अवतार सिंह पाश के शब्दों में *"यह हादसा हमारे समयों में ही होना था दोस्तो...*। गुजरात से लेकर भागलपुर, मुरादाबाद से लेकर मलियाना तक के हत्याकांड रचने वाले जब सत्ता में हों तो और क्या उम्मीद की जा सकती है?

एरियल शैरोन मानवद्रोही विश्व पूंजीवादी व्यवस्था के क्रूरतम और घृणिततम नुमाइन्दों में से एक है। मेहनतकशों की विश्वव्यापी लूट की यह व्यवस्था जब तक कायम रहेगी तब तक शैरोन और उसके आका बुश और ब्लेयर जैसे युद्ध अपराधियों की बिरादरी में नये-नये नाम जुड़ते रहेंगे, हिटलर की औलादें नये-नये रूपों में पैदा होती रहेंगी। दुनिया भर में क्रान्तिकारी आंदोलनों के फौरी बिखराव के कारण आज ये भले ही इतराते फिर रहे हों पर इतिहास के कूड़ेदान में इनकी जगह तय है। मानवता के इस अपराधी के खिलाफ किसी अन्तरराष्ट्रीय अदालत में मुकदमा चले न चले, जनता की अदालत अपना फैसला जरूर सुनायेगी।

भारत से लौटते ही शैरोन ने फलस्तीनियों के आत्मघाती हमलों की आड़ लेकर उनके मुक्तिसंघर्ष को कुचलने का अपना बर्बर अभियान और तेज कर दिया।

इस्रायली मंत्रिमंडल ने फलस्तीनी राष्ट्रपति यासर अराफात को गाजा पट्टी से "हटाने" का ही प्रस्ताव पारित कर दिया और इजरायली उप प्रधानमंत्री ने बैठक के बाद कहा कि इस्रायल अराफात की हत्या भी कर सकता है। 'जेरुसलम पोस्ट' नाम के सबसे बड़े इस्रायली अखबार ने तो अपने संपादकीय में अराफात को मार डालने का आह्वान ही कर डाला।

पागलपन से भरी दिखने वाली इस घोषणा के पीछे एक खतरनाक राजनीतिक सोच काम कर रही है। इस्रायली सरकार एक घातक नीति पर चल रही है जिसका मकसद है फलस्तीनी राष्ट्रीय आंदोलन को कुचलना और पश्चिमी तट तथा गाजा पट्टी में अधिकाधिक जमीन हड़पकर फलस्तीनी राज्य के गठन को असम्भव बना देना। वह जानबूझकर फलस्तीनियों की ओर से हिंसक प्रतिक्रिया भड़काना चाहती है ताकि उसे बहाने के तौर पर इस्तेमाल करके इजरायली सेना फलस्तीन के खिलाफ बड़े पैमाने पर हमला बोल सके।

प्रतिक्रियावादी इजरायली सत्ता ऐसी उकसावे की कार्रवाइयां करने में माहिर है। वह जानती है कि अराफात की हत्या से बढ़कर उकसावे की कोई कार्रवाई नहीं हो सकती। और इसके बाद इजरायली सत्ता को फलस्तीनी जनता पर पूरी ताकत से हमला करने का बहाना मिल जायेगा।

इस हिमाकतभरी घोषणा से शैरोन फलस्तीनी जनता को यह धमकी भी देना चाहता है कि इस्रायली सत्ता का प्रतिरोध करना बेकार साबित होगा। लगातार वहशियाना हमले झेल रहे लोगों को इजरायली सरकार यह संदेश देना चाहती है कि दुनिया में ऐसा कोई भी अपराध नहीं है जो वह नहीं कर सकती और उसे कोई रोक भी नहीं सकता।

दुनिया भर की पूंजीवादी सत्ताओं ने जिस पिलपिले ढंग से इजरायल की इस धमकी की निन्दा की है उससे भी शैरोन और उसके प्रतिक्रियावादी गिरोह के हौसले बुलंद होंगे। अमेरिका ने तो संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में इस्रायल के इस कदम की निन्दा के लिए लाये गये प्रस्ताव को भी वीटो कर दिया। हालांकि दूसरी तरफ उसने यह बयान भी दिया है कि ऐसा करने से अराफात की लोकप्रियता और बढ़ेगी तथा आतंकवाद को बढ़ावा मिल सकता है। जाहिर है अमेरिका को बस यही डर सता रहा है कि अगर अरब जनता का आक्रोश भड़क उठा तो इराक में पहले से ही फंसे अमेरिकी हुक्मरानों की जान और भी सांसत में पड़ जायेगी।

हत्यारे की हिस्ट्रीशीट

अगस्त 1953 - एरियल शैरोन की कमान में इस्रायली सेना की कुख्यात यूनिट 101 का गठन जिसका काम था आतंक फैलाने के लिए फलस्तीनी और अरब शरणार्थी शिविरों और गांवों पर हमले करके निहत्थे नागरिकों को निशाना बनाना। दर्जनों गांवों पर हमला।

14 अक्टूबर 1953 - शैरोन के नेतृत्व में यूनिट 101 ने जार्डन की सीमा में किब्या गांव पर धावा बोला। बंद दरवाजों पर मशीनगनों से गोलियां बरसाईं, खिड़कियों से हथगोले फेंककर घर उड़ा दिये गये। 69 नागरिक मारे गये–इनमें दो तिहाई औरतें और बच्चे थे।

1971 - इस्रायली सेना की दक्षिणी कमान के प्रमुख शैरोन के आदेश से 'गाजा को शान्त करने' के नाम पर बर्बर दमनचक्र–सैकड़ों घर उड़ाये गये, शरणार्थी कैंपों पर बुलडोजर चले, अनगिनत नागरिकों की हत्या, पूरा इलाका जेल में तब्दील।

जून 1982 - रक्षामंत्री शैरोन की कमान में फलस्तीनी मुक्ति संगठन को तबाह करने के उद्देश्य से लेबनान पर भारी हमला। 20,000 लेबनानी और फलस्तीनी मारे गये। इनमें 90 प्रतिशत नागरिक। पांच लाख बेघर।

12 अगस्त 1982 - 'काला गुरुवार' नाम से कुख्यात। नागरिक इलाकों पर 11 घंटे तक अंधाधुंध बमबाकरी। 500 से ज्यादा लेबनानी और फलस्तीनी नागरिकों की मौत।

16 सितम्बर 1982 - साबरा और शतीला का घिनौना, बर्बर जनसंहार

शैरोन के आदेश से, इस्रायली हथियारों से लैस लेबनानी फलांजिस्टों के दस्तों ने एक-दूसरे से लगे साबरा और शतीला शरणार्थी शिविरों में लगातार 40 घंटे तक मौत और पाशविकता का नंगा नाच किया। इस्रायली सेना की फ्लडलाइटों की रोशनी में और दूरबीन से देख रहे इस्रायली अफसरों की नजरों के सामने औरतों से बलात्कार किया गया और कितने ही लोगों को मारने से पहले या बाद में उनके हाथ-पैर काट डाले गये या पेट फाड़ दिया गया। इस्रायली सरकार के मुताबिक 700 जानें गईं; अन्य संस्थाओं के अनुसार 2000 से लेकर 3500 मारे गये।

सितम्बर, 2000 से अब तक – फलस्तीनी नेतृत्व और आबादी पर लगातार सैनिक हमले, जेनिन शरणार्थी शिविर में कत्लेआम, सैकड़ों फलस्तीनियों की हत्या, शांति स्थापना की हर कोशिश की राह में अड़ंगेबाजी, आतंकवाद मिटाने के नाम पर वहशी राजकीय आतंकवाद की खुली छूट...

स्रोत : ***संयुक्त राष्ट्र महासभा का प्रस्ताव सं. 37/123 डी; बेल्जियम के न्यायालय में शेरोन के खिलाफ दायर याचिका; दि इंडिपेंडेंट, लंदन; प्रसिद्ध इस्रायली इतिहासकार एवी श्लेम; इस्रायल सरकार द्वारा नियुक्त यित्झाक काहन जांच आयोग आदि....***

(बिगुल मजदूर दस्ता और दिशा छात्र संगठन की ओर से बांटे गये पर्चे से)

11 सितम्बर 2001 बनाम 11 सितम्बर 1973

इसी महीने दुनियाभर में 11 सितम्बर 2001 को अमेरिका में वर्ल्ड ट्रेड सेंटर पर हुए हमले की दूसरी बरसी मनाई गई। लेकिन इसी दिन, आज से 30 साल पहले एक और शर्मनाक और खूनी घटना हुई थी जिसकी पूंजीवादी मीडिया में चर्चा तक नहीं की जाती।

11 सितम्बर 1973 को दक्षिणी अमेरिका के देश चिली के राष्ट्रपति भवन पर बम बरसाकर अत्यन्त लोकप्रिय राष्ट्रपति साल्वादोर अयेंदे और चार हजार से अधिक लोगों को मार डाला गया। इस हत्याकांड में अमेरिकी खुफिया एजेंसी सीआईए और कई अमेरिकी कंपनियां सीधे शामिल थीं। अयेंदे का जुर्म यह था कि उन्होंने साम्राज्यवादी देशों की कम्पनियों की लूट और मुनाफों पर अंकुश लगाने की जुर्रत की थी।

अयेंदे की सवैधानिक ढंग से चुनकर आई सरकार को इस रक्तरंजित तख्तापलट में हटाकर अमेरिका ने सैनिक तानाशाह जनरल पिनोशे को गद्दी पर बैठाया जिसने करीब 17 साल के अपने शासन में लगातार हत्याओं, उत्पीड़न, देशनिकाला और जघन्य दमनकारी कदमों के जरिए लाखों लोगों की बलि चढ़ाई। पिनोशे की इस बर्बरता का इतिहास में कोई सानी नहीं है। अमेरिका और ब्रिटेन न केवल अपने इस पिट्ठू के काले कारनामों की ओर से आंख मूंदे रहे बल्कि उसकी सत्ता के पतन के बाद उस पर मुकदमा चलाने के प्रयासों में भी अड़ंगा डालते रहे।

क्यूबा में मुंहकी खाने के बाद अमेरिका किसी भी कीमत पर दक्षिण अमेरिका में अपनी चौधराहट को बरकरार रखना चाहता था। अयेंदे के तख्तापलट के पीछे उसकी यही मंशा थी। अयेंदे की सत्ता उसकी आंखों की किरकिरी बनी हुई थी।

दरअसल, लगभग तीन साल के शासन के दौरान राष्ट्रपति अयेंदे ने चिली की जनता को विदेशी (खासकर अमेरिकी) दबदबे और शोषण से आजाद कराने के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाए थे।

तत्कालीन अमेरिकी विदेशमंत्री हेनरी किसिंगर ने बेशर्मी से अमेरिकी मंसूबों का इजहार करते हुए कहा था :

"चिली के लोगों की गैरजिम्मेदारी के कारण (जिसके फलस्वरूप उन्होंने अयेंदे को अपना राष्ट्रपति चुन लिया) चिली को मार्क्सवादी रास्ते पर चलने की इजाजत नहीं दी जा सकती!"

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वानी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंग: कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।
सम्पादकः **डा. दूधनाथ, मुकुल** • सम्पादकीय पताः **69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006** • सम्पादकीय उपकार्यालयः जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ